श्रीधादर्श

३६

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ
नवम्बर १९९८

संस्थापक एवं आद्य सम्पादक : (स्व.) डा० ज्योति प्रसाद जैन
प्रबन्ध/प्रधान सम्पादक एवं प्रकाशक : श्री अजित प्रसाद जैन
महामन्त्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०
पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ–२२६ ००४
सम्पादक मंडल : डा० शशि कान्त, श्री रमा कान्त जैन

शोधादर्श-३६

★ विषय-क्रम ★

१. गुरुगुण-कीर्तन : माणिक्यनन्दि —श्री रमा कान्त जैन २४६
२. भूल सुधार २५१
३. महावीर वचनामृत २५१
४. देवी-देवताओं की पूजा-उपासना —डा० ज्योति प्रसाद जैन २५३
५. सम्पादकीय : तीर्थ क्षेत्रों का विकास —श्री अजित प्रसाद जैन २५८
६. जीवनकी निष्कपटता ही ऋजुता है —डा० भागचन्द्र जैन 'भास्कर' २६५
७. "वीर विनोद" में वर्णित जैन धर्म —श्री प्रणव देव २६६
८. व्यास कृत हरिवंशपुराण एवं जिनसेन कृत
हरिवंशपुराण के आलोक में श्री कृष्ण चरित्र —कु० नीलम जैन २७२
९. शोध-प्रबन्ध सार
जीवन्धर चम्पू : एक समीक्षात्मक अध्ययन
—डा० (श्रीमती) राका जैन २७८
१०. शोध सार
प्राचीन मराठी जैन आख्यान-काव्य
—डा० (सौ०) हेमलता जोहरापुरकर २८३
११. 'हिमवन्त-थेरावली' की वास्तविकता —डा० शशि कान्त २८६

१२. विचार-विन्दु
मन्दिर, मूर्ति और वैराग्यता —श्री धन्य कुमार जैन २९९

१३. चिन्तन कण
भगवान ऋषभदेव की निर्वाण भूमि —श्री अजित प्रसाद जैन ३०१

१४. पर्यावरण और जीवदया
हमारी आस्थायें और प्रकृति —डा० सुधांशु कुमार जैन ३०४

१५. जिज्ञासा —श्री प्रकाश चन्द्र जैन ३०६
—जस्टिस एम० एल० जैन ३०७

१६. समाचार विमर्श —श्री अजित प्रसाद जैन
और दो तीर्थों का उदय ३१०
जम्बू द्वीप, तीस चौबीसी, और अब त्रिलोक मन्दिर
निर्माण की महायोजना ३१३
गोलाकोट क्षेत्र—कटे सिरों की बरामदगी ३१४

१७. साहित्य सत्कार
प्रतिष्ठा प्रदीप; महाराष्ट्र का जैन समाज
—श्री अजित प्रसाद जैन ३१६
नव प्रभात : सर्वतोभद्र इष्ट सिद्धी छत्तीसी;
जरा सोचिए; विवेक मार्त्तण्ड; श्वेताम्बर मत कैसे बना ?;
महाकवि आ० विद्यासागर ग्रन्थावली (खण्ड १ से ४);
सूर्योदय शतक; छायांकन;
पद्मांजलि : पत्रं, पुष्पं, फलं, तोयं —श्री रमा कान्त जैन ३१९
Jinamanjari; पञ्चाल; तित्थयर (सराक विशेषांक);
भजन-मणिमाला; सरल जैन विवाह संस्कार एवं नूतन गृह-प्रवेश
व मुहूर्त विधि; भारतीय वाङ्मय में पार्श्वनाथ विषयक साहित्य;
कविता : बदलते सन्दर्भ; Jaina Karmology; Keine
Gewalt worte des Furbereiters Mahavira;
Correlation of the Age of Bhagavan
Mahaveera and Bhagavan Gautama Buddha
—डा० शशि कान्त ३२४

१८. अभिनन्दन ३३१

१९. समाचार विविधा ३३४

२०. शोक संवेदन ३४०

२१. आभार ३४१

२२. पाठकों की दृष्टि में ३४१
पं० नाथू लाल जैन शास्त्री, डा० श्रेयांस कुमार जैन,
डा० नेमी चन्द, डा० सुरेन्द्र कुमार आर्य, डा० परमानन्द जड़िया,
डा० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, श्री मदन मोहन वर्मा,
श्री धन्य कुमार जैन, श्री आनन्द प्रकाश जैन,
डा० शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी, प्रो० डा० देवेन्द्र हाण्डा,
डा० शैलेन्द्र कुमार शर्मा, पं० अमृत लाल जैन शास्त्री,
श्रीमती राजदुलारी जैन, श्री किरण कुमार जैन,
श्री शुक्ल चन्द्र जैन, डा० पी० जी० मिश्रीकोटकर,
श्री राजेन्द्र नगावत, श्रीमती वासंती शहा, श्री प्रकाश पालावत,
ब्र० संदीप जैन 'सरल', डा० श्रीरंजन सूरिदेव,
श्री सतीश कुमार जैन, डा० रतनचन्द्र जैन,
श्री महावीर प्रसाद जैन सर्राफ, श्री क० ध० मिश्रीकोटकर,
श्री सुन्दर सिंह जैन, श्री वेद प्रकाश गर्ग,
डा० सन्तोष कुमार वाजपेयी, डा० अजय कोठारी

२३. इस अंक के लेखक ३५२

२४. अनुक्रमणिका शोधादर्श ३४ से ३६ ३५३

मूल्य १५ रु०

वार्षिक शुल्क ४० रु० (ममीआर्डर द्वारा प्रेष्य)

आवश्यक

कृपया वर्ष १९९९ का वार्षिक शुल्क ४० रु० (चालीस रुपये) मनीआर्डर द्वारा 'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति उ. प्र., ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४' को यथाशीघ्र भेजने का अनुग्रह करें।

—प्रबन्ध सम्पादक

आवश्यक सूचना

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमन्त्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिए और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहिएं। यथासम्भव लेख ३–४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। **लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें।**

शोधादर्श में **समीक्षार्थ** पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं की **दो प्रतियां** भेजी जायें।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु **शोधादर्श** का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक / पत्रिका सम्पादक को 'ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४' के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों/न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

—प्रबन्ध सम्पादक

निवेदन

सुधि पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा उद्बोधन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

– सम्पादक मण्डल

मुद्रक : रत्न-ज्योति प्रेस, चारबाग, लखनऊ-४ (उ० प्र०)

शोधादर्श-३६

वीर निर्वाण संवत् २५२५ नवम्बर १९९८ ई०

गुरुगुण-कीर्तन

माणिक्यनन्दि

अकलङ्कवचोम्भोधेरुद्ध्रे येन धीमता ।
न्यायविद्यामृतं तस्मै नमो माणिक्यनन्दिने ।।

—लघु अनन्तवीर्य : **प्रमेयरत्नमाला**
(विक्रम की १२वीं शती का पूर्वार्द्ध)

भावार्थ—जिस धीमान ने अकलङ्कदेव के वचन-सागर का मन्थन करके न्यायविद्या का अमृत निकाला, उन माणिक्यनन्दि को नमस्कार है ।

माणिक्यनन्दी जिनराज-वाणी-प्राणाधिनाथः पर-वादी-मर्द्दी ।

—**जैन शिलालेख संग्रह**, भाग-३, शि० ले० ६६७
(बिना काल निर्देश का नगर तालुक-शिमोगा का शि० ले० ४६)

भावार्थ—माणिक्यनन्दी जिनराज, वाणी के पति अर्थात् वाणी पर अधिकार रखने वाले, और विरोधी मतों के वादियों का मर्दन करने वाले अर्थात् उन्हें वाद-विवाद में परास्त करने वाले, थे ।

ऊपर जिन माणिक्यनन्दि को सादर नमन किया गया है और 'जिनराज' तक अभिहित किया गया है, उन्हें भट्ट अकलङ्कदेव (७वी शती ईस्वी) के 'न्याय' विषयक ग्रन्थों का गहन अध्ययन कर **परीक्षामुख** नामक ग्रन्थ की संस्कृत में रचना करने का श्रेय है । उनकी यही एक मात्र ज्ञात कृति है जिसमें कुल २०८ सूत्र हैं जो छह समुद्देशों (अध्यायों) में हैं । संक्षिप्त, सरल और अर्थगाम्भीर्य से युक्त

इस कृति में जिन विषयों का विवेचन किया गया है, वे हैं—प्रमाण का स्वरूप, प्रमाण के भेद, प्रत्यक्ष प्रमाण का लक्षण, परोक्ष प्रमाण का लक्षण, प्रमाण का फल और प्रमाणाभास।

यह ग्रन्थ दर्शन और न्याय के अध्येताओं में इतना लोकप्रिय हुआ कि परवर्ती विद्वानों ने इस पर अनेक टीका-व्याख्या लिखीं। इनमें उल्लेखनीय हैं—आचार्य प्रभाचन्द्र द्वारा रचित १२००० श्लोक प्रमाण **प्रमेयकमलमार्त्तण्ड** नामक वृहत् टीका, लघु अनन्तवीर्य कृत मध्यम परिमाण वाली **प्रमेयरत्नमाला**, भट्टारक चारुकीर्ति द्वारा रचित **प्रमेयरत्नमालालङ्कार** तथा शान्ति वर्णी की **प्रमेयकण्ठिका**। आचार्य देवसूरि के **प्रमाणनयतत्त्वालोक** तथा आचार्य हेमचन्द्र की **प्रमाणमीमांसा** पर भी इसका प्रभाव पड़ा बताया जाता है।

माणिक्यनन्दि नन्दिसंघ के प्रमुख आचार्य थे। **प्रमेयरत्नमाला** की टिप्पणी एवं अन्य प्रमाणों से विदित होता है कि धारा नगरी इनकी निवास स्थली रही। नयनन्दि कृत **सुदंसणचरिउ** (वि० सं० ११०० अर्थात् १०४३ ई०) की प्रशस्ति से विदित होता है कि माणिक्यनन्दि के गुरु त्रिलोकनन्दि थे जो अशेष ग्रन्थों में पारंगत तथा गणी रत्ननन्दि के शिष्य थे। उक्त प्रशस्ति में नयनन्दि ने स्वयं को माणिक्यनन्दि का प्रथम शिष्य सूचित किया है। अपने **सकलविधि-विधान काव्य** की प्रशस्ति में उन्होंने माणिक्यनन्दि को प्रत्यक्ष-परोक्ष प्रमाण नीर में नय की तरल तरंग समूह से गम्भीर, उत्तम सप्तभंगरूप कल्लोलमाला से भूषित, जिनशासन रूप निर्मल विशाल सरोवर में कमल, विबुधचन्द्र और पण्डित चूड़ामणि विशेषणों से अभिहित किया है।

अपने **प्रमेयकमलमार्त्तण्ड** के मंगलाचरण पद्य २ में "शास्त्रं करोमि वरमल्पतरावबोधो माणिक्यनन्दि पदपङ्कजसत्प्रसादात्" लिखकर तथा उसकी प्रशस्ति में प्रभाचन्द्र ने भी माणिक्यनन्दि को अपना गुरु सूचित किया है।

न्यायदीपिका में अभिनव धर्मभूषण की इस उक्ति "तथा चाह भगवान् माणिक्यनन्दि भट्टारकः" से विदित होता है कि वह भट्टारक थे और ग्रन्थकर्ता उन्हें भगवान के समान पूज्य मानते थे।

इन माणिक्यनन्दि का समय दसवीं शती ईस्वी के उत्तरार्द्ध और ग्यारहवीं शती ईस्वी के पूर्वार्द्ध में रहा होगा।

—रमा कान्त जैन

भूल सुधार

शोधादर्श-३५ में पृ० १०३ पर **गुरुगुण-कीर्तन** के अन्तर्गत उद्धृत प्रथम श्लोक और उसका भावार्थ कृपया निम्नवत पढ़ा जाय—

प्रमाणमकलङ्कस्य पूज्यपादस्य लक्षणम्।
धनञ्जय कवेः काव्यं रत्नत्रयमपश्चिमम्।।

—धनञ्जय : नाममाला (८वीं शती ई०)

भावार्थ—अकलङ्क का प्रमाण, पूज्यपाद का व्याकरण और धनञ्जय कवि का काव्य, ये तीन अपश्चिम रत्न हैं।

—रमा कान्त जैन

महावीर वचनामृत

दाण-पूजा-सीलोपवास चाउव्विहो सावय धम्मो।

दानशीलता, गुणीजनों का पूजा-सत्कार, शील-सदाचरण और उपवास ये चार प्रकार का श्रावक (गृहस्थ) धर्म है।

जूयं-मज्जं-मंसं-वेसा, पारद्धि-चोर-परयारं।
दुग्गइगमणस्सेदाणि हेउभूदाणि पावाणि।।

द्यूत (जुआ), मद्य (शराब), मांस, वेश्या, शिकार, चोरी और पर-पुरुष या पर-स्त्री का सेवन दुर्गति कराने वाले और पाप के कारण हैं। (अतः गृहस्थ के लिये ये सात व्यसन वर्जित हैं।)

पंचेवणुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि ।
सिक्खावय चत्तारि य संजमचरणं च सायारं ।।

पांच अणुव्रतों (अहिंसा, सत्य, अस्तेय अर्थात् अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य), तीन गुणव्रतों (दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्डव्रत) और चार शिक्षा व्रतों (सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण और अतिथि संविभाग) का पालन करना ही गृहस्थ का संयमाचरण है ।

एहु धम्मु जो आयरइ बंभणु सुद्दुवि कोइ ।
सो सावउ, किं सावयहं अण्णु कि सिरिमणि होइ ।।

इस धर्म का जो आचरण करता है चाहे कोई ब्राह्मण हो या शूद्र वह श्रावक है, अन्यथा श्रावक के सिर पर क्या कोई मणि जड़ी रहती है ।

णवि देहो वंदिज्जइ णवि य कुलो णवि य जाइसंजुत्तो ।
को वंदइ गुणहीणो ण हु सवणो णेय सावओ होइ ।।

देह की वन्दना नहीं की जाती, कुल और जाति के कारण भी कोई वन्दन योग्य नहीं होता । गुणहीन की, चाहे वह श्रमण (साधु) हो या श्रावक (गृहस्थ), कौन वन्दना करता है ?

कम्मुणा बंभणोहोइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
वईसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ।।

कर्म (अपने आचरण, कार्यों) से ही मनुष्य ब्राह्मण होता है, कर्म से ही क्षत्रिय, कर्म से ही वैश्य और कर्म से ही शूद्र होता है (जन्म से नहीं) ।

समयाए समणो होइ, बंभचेरेण बंभणो ।
नाणेय य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ।।

व्यक्ति समता से श्रमण, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि और तप करने से तपस्वी होता है ।

देवी-देवताओं की पूजा-उपासना

—डा० ज्योति प्रसाद जैन

जिनधर्म का स्पष्टतया एवं सतत् घोषित लक्ष्य तप-त्याग-संयम की सम्यक् साधना द्वारा कर्मों का उन्मूलन करके मोक्ष, निर्वाण या सिद्धत्व प्राप्त करना है। परम प्राप्तव्य के लिये की गई यह साधना निष्काम होती है—किसी भी ऐहिलौकिक स्वार्थ, लालसा, वासना, इच्छा या आकांक्षा से प्रेरित होकर वह नहीं की जाती। उसके करते ये क्षुद्र फल तो अनचाहे स्वतः प्राप्त होते रहते हैं, साधक की दृष्टि उन पर नहीं होती। यह साधना इष्टदेव की भक्ति के आधार से चलती है, और वह भक्ति अपने आदर्श इष्टदेव के प्रति प्रशस्त गुणानुराग के रूप में अभिव्यक्त होती है। साधना साध्य के अनुरूप होती है तभी फलवती होती है। अतएव, मोक्ष एवं मोक्षमार्ग में आस्था रखने वाले जिनधर्मी का आदर्श इष्टदेव सकल परमात्मा के रूप में सर्वज्ञ-वीतराग-हितोपदेशी पूर्णपुरुष अर्हत्-जिनेन्द्र होते हैं, और निकल परमात्मा के रूप में अशरीरी सर्वथा निरंजन सच्चिदानंदघन सिद्ध परमेष्टि होते हैं। ये अर्हंत और सिद्ध ही सच्चे देव हैं, वास्तविक परमेष्टि हैं। इनके द्वारा आचरित एवं निर्देशित मार्ग के अनुसर्त्ता एवं एकनिष्ठ साधक आचार्य-उपाध्याय-साधु रूपी निर्ग्रन्थ मुनिराज ही सच्चे गुरू होते हैं। उक्त पंचपरमेष्टि भगवान ही एक जैन साधक के लिए आराध्य एवं उपास्य हैं। वह उन्हीं की प्रशस्तगुणानुराग रूप भक्ति—गुणस्तवन, वन्दना, अर्चना, आराधना, पूजा, उपासना करके अहोभाग्य मानता है। उनके अतिरिक्त जितने भी अन्य देवी-देवता तथा गुरू हैं वे सब कुदेव और कुगुरू हैं, क्योंकि उसके मोक्षरूपी लक्ष्य की प्राप्ति की साधना में वे कार्यकारी नहीं हैं, वरन् बाधक अथवा घातक ही होते हैं। इन रागी-द्वेषी देवी-देवताओं की उपासना से तो राग-द्वेष के पोषण की ही प्रेरणा मिल सकती है, मात्र वीतराग प्रभु की पूजा-उपासना ही वीतराग भाव के पोषण में समर्थ हो सकती है। वह भक्ति ही क्या जो भक्त

को ही भगवान न बना दे। वीतराग में अनुराग होते ही विषय वासनाओं से विराम होने लगता हैं, स्वयं में वीतरागता पनपने लगती है, वर्ना—'व्यर्थहि हे मुनीश ! तव सुमिरण।
जो न सिखावत तोर अनुकरण ।।'

तब, इस सर्वविदित एवं सर्वमान्य सिद्धान्त के रहते भी स्वयं जैन परम्परा में पूर्वोक्त पंचपरमेष्टि से भिन्न अन्य देवी-देवताओं की पूजा-उपासना कैसे और क्यों प्रचलित हो गई ? इसके कई ऐतिहासिक या परिस्थितिजन्य कारण हैं। किन्तु सबसे बड़ा कारण जो रहा प्रतीत होता है, वह है कि अधिकांश संसारी स्त्री-पुरुष प्रायः सदैव ही मोह माया ग्रस्त, ऐहिलौकिक स्वार्थों एवं वांछाओं से प्रेरित, पर्यायबुद्धि मिथ्यादृष्टि होते हैं। मोक्ष, वीतरागता, समत्व-भाव, सम्यकत्व आदि तत्त्व उनकी बुद्धि एव रुचि से बाह्य हैं। जब उन्हें यह बताया जाता है कि अर्हंत या सिद्ध भगवान न किसी की पूजा-भक्ति से प्रसन्न होकर उसे कुछ देते हैं, और न निन्दा-तिरस्कार आदि से कुपित होकर उसका कुछ अहित ही करते हैं, तो ऐसे तीर्थंकरादि जिन भगवान उस संसारी व्यक्ति के लिये निरर्थक हो जाते हैं, भले ही वह गतानुगतिक या दिखावे के लिये उनका नित्य दर्शन-पूजन-स्तवन आदि भी करता हो। उसे तो अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये ऐसे देवी-देवता चाहियें जो उसकी पुकार सुन सकें, उसके आसन्न संकटों, विपत्तियों, रोग, शोक, शत्रु, भय आदि का निवारण कर सकें और प्रसन्न होकर उसे स्त्री, पुत्र, धन, वैभव, जय, यश आदि फल दे सकें। अतएव कतिपय पुरातन आचार्यों ने लोकसंग्रह की दृष्टि से ऐसे नाम-जैनों को जैन बनाये रखने के लिये, शायद जैनतरों को आकर्षित करने के लिये भी, और संभवतया लोक में प्रचलित नाना रागी-द्वेषी देवी-देवताओं की बहुधा हिंसक पूजा-उपासना से जैन धर्म के अनुयायियों को विरत रखने के उद्देश्य से जैन परम्परा सम्मत यक्ष, व्यन्तर, आदि देवगति के कतिपय देवी-देवताओं को जिनशासन रक्षक, जिनशासन प्रभावक, शासन देवता आदि नाम देकर उनका आदर सत्कार करने की छूट दे दी।

किसी भी धार्मिक परम्परा में जब एक शिथिलाचार स्थान कर लेता है तो शनैः-शनैः उसमें अन्य अनेक विकृतियां एवं शिथिलाचार प्रविष्ट होते जाते हैं। समय रहते ही उनका संशोधन-परिमार्जन नहीं कर दिया जाता है तो वे गहरी जड़ पकड़ लेते हैं। शायद यही कारण है कि दिगम्बर आम्नाय की अपेक्षा श्वेताम्बर परम्परा में पंचपरमेष्टि से भिन्न अन्य अनेक देवी-देवताओं की पूजा-उपासना, आराधना, साधना और उनसे सम्बद्ध मन्त्र-तन्त्रवाद एवं चमत्कार गाथाओं का प्रचलन व प्रसार कुछ पहले तथा कहीं अधिक विस्तृत एवं व्यापक हुआ—मध्यकाल के यतियों और श्रीपूज्यों आदि ने तो उसे चरम शिखर पर पहुंच दिया। श्वेताम्बर बन्धुओं की देखा-देखी कतिपय दिगम्बराचार्यों ने भी उक्त देवी-देवताओं की उपासना व साधना का पोषण करना शुरू कर दिया, और मध्यकाल के भट्टारकों ने तो श्वेताम्बर श्रीपूज्यों एवं यतियों आदि को भी इस होड़ में पछाड़ने का भारी प्रयत्न किया। अतएव श्वेताम्बर सम्प्रदाय की भांति दिगम्बर परम्परा में भी यह विकृति प्रविष्ट हो गई, विशेषकर भट्टारकपन्थी या बीसपन्थी धारा में उसका पर्याप्त प्रचार हुआ, और आज भी कई मुनिराज, आर्यिका माताएं एवं पंडित जन जोर-शोर से कर रहे हैं। एक नव प्रकाशित मन्त्र शास्त्र में तो भूत, पिशाच, डाकिनी, वैताल आदि की पूजा-अर्चना के आदेश-निर्देश तथा मारण, उच्चाटन, वशीकरण, रोगनिवारक, सिद्धिदायक, शत्रुसंहारक आदि नाना प्रकार के मन्त्र-तन्त्रों का निरुपण देखने में आया—इनमें ऐसे भी मन्त्र हैं जिनकी साधना में किसी पशु या पक्षी को मार कर उसके रक्त-मांसादि का प्रयोग करना बताया गया है! जैनधर्म की आत्मा के सर्वथा प्रतिकूल ऐसे घृणित, हिंसक एवं विषयवासना पोषक विधान जैनत्व और जैनों का क्या हित कर सकेंगे? यह अवश्य है कि दुर्बल हृदय वाले तथा धर्म से अनभिज्ञ मोहासक्त स्त्री-पुरुष उन्हें सहर्ष अंगीकार कर लेते हैं और मूढ़ताओं में डूब कर धर्म से और अधिक दूर जा पड़ते हैं। निहित स्वार्थ इस स्थिति का मनमाना एवं पूरा-पूरा लाभ उठाने की चेष्टा करते हैं।

जैन परम्परा में तो धर्मपथ की प्रथम सीढ़ी सम्यग्दर्शन है। व्यवहार सम्यग्दृष्टि भी देवमूढ़ता, गुरुमूढ़ता एवं लोकमूढ़ता से मुक्त रहने को चेष्टा करता है। सच्चे देव-शास्त्र-गुरू के अतिरिक्त अन्य किसी की भी पूजा-उपासना का निषेध है, यहाँ तक कि कोई व्यक्ति निश्चय सम्यग्दृष्टि भी हो किन्तु असंयमी हो तो एक सच्चा जैन उसके साथ साधर्मी वात्सल्य तो बरतेगा, किन्तु उसकी वन्दना-अर्चना नहीं करेगा। जिनवाणी सम्मत देवगति के जीव चार निकाय के होते हैं, अर्थात् भवनवासी, वाणव्यंतर, ज्योतिष रूप भवनत्रिक, तथा कल्पवासी। कोई भी सम्यग्दृष्टि मनुष्य मर कर भवनत्रिक में जन्म नहीं लेता, कल्पों की देवियों में भी उत्पन्न नहीं होता। अतएव भवनत्रिक के अधिकांश देवी-देवता भी सभी सम्यग्दृष्टि नहीं होते। यों देवगति की सभी निकायों में कारणवश किसी को भी सम्यकत्व की प्राप्ति हो सकती है, किन्तु सयंमभाव तो किसी भी देव या देवी की उस पर्याय में कभी हो ही नहीं सकता। यह अवश्य है कि कई देवी-देवताओं को चाहे वे किसी भी जाति के हों, जिनधर्म, जिनदेव तथा जिनभक्तों से अनुराग हो सकता है। शासन की रक्षा, प्रभावना आदि में तथा जिनभक्तों के प्रति उपकार करने और दुर्जनों का निग्रह करने में भी वे कभी-कभी सचेष्ट देखे जाते हैं। उनके प्रति साधर्मी वात्सल्य, अनुराग एवं आदर-सत्कार का भाव होने में, बाधा नहीं है, किन्तु उन्हें देव-शास्त्र-गुरू का स्थानापन्न करके उनकी पूजा-उपासना करना मिथ्यात्व है। अनेकों दिगम्बराचार्यों ने बार-बार इस तथ्य का उद्घोष किया है। इतना ही नहीं, कई धर्म-मर्मज्ञ श्वेताम्बराचार्यों ने भी इसका समर्थन किया है। उदाहरणार्थ आठवीं शती ई० के श्वेताम्बराचार्य उद्योतनसूरि की प्राकृत भाषा में निबद्ध **कुवलय माला** कथा में एक स्थल पर कथा नायक कुवलय चन्द्र के साथ एक यक्षकन्या के वार्तालाप का प्रसंग दिया गया है। एक बीहड़ वन में भटका हुआ कुमार अत्यन्त विपन्नावस्था में थका-मांदा एक वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहा था कि एक यक्षकन्या प्रकट हुई। परिचय के आदान-प्रदान के पश्चात वह बोली–'कुमार! तुम्हें अभी बहुत

दूर जाना है, मार्ग विकट है, अनेक विघ्न-बाधायें आएंगी।' कुमार ने दृढ़तापूर्वक कहा—'देवी! श्रमणोपासक विघ्न-बाधाओं से भयभीत नहीं हुआ करते।' यक्षि प्रसन्न होकर बोली—'तब तो तुम मेरे साधर्मी हो। तुम्हारी सहायता करना मेरा कर्त्तव्य है। कहो, तुम्हें क्या दूँ?' कुमार—'अर्हत के पुजारी याचक नहीं होते, देवी! मुझे कुछ नहीं चाहिए।' यक्षि—'सत्य है, परदेशी! किन्तु देव दर्शन भी निष्फल नहीं होता, तुम कुछ तो मांगो।' कुमार—'अहिंसा के पुजारी की दीनवृत्ति नही होती। उसे दृढ़ आत्म-विश्वास होता है। यही मेरी आस्था है।'

इसी विद्वान लेखक ने एक अन्य स्थल पर गणधर गौतम द्वारा भगवान महावीर से किया गया प्रश्न और भगवान द्वारा उसका समाधान दिया है—

गौतम—'भंते! देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना सफल होती हैं, अथवा निष्फल? ये लोग मनुष्य की सहायता क्यों करते हैं?'

भगवान—'गौतम! इस संसार में रागी-द्वेषी देव भी हैं। वे ही मनुष्य की पूजा-अर्चना से प्रसन्न होते हैं और अवज्ञा, निन्दा आदि से कुपित होते हैं। वाणव्यंतर, भवनवासी, ज्योतिषी एवं कल्पों (स्वर्गों) में उत्पन्न सभी देव राग-द्वेष से युक्त होते हैं। ये लोग पूर्व जन्म के मोह के वशीभूत होकर मनुष्यों का अकारण भी उपकार करते हैं और द्वेषवश अपकार भी करते हैं।'

गौतम—'तब फिर स्व-कृत कर्मों का क्या महत्त्व रहा? लोग पाप कर्म करके भी इन देव-देवियों की भक्ति करके सुफल प्राप्त कर लिया करेंगे?'

भगवान—'ऐसा नहीं है, गौतम! ये देव भी मनुष्य के पाप को पुण्य रूप और पुण्य को पाप रूप परिवर्तित नहीं कर सकते। जब प्राणी का पुण्योदय होता है तभी ये सहायक होते हैं, और पापोदय में पीड़ाकारक बन जाते हैं। पुण्यहीन व पापी कितनी भी इनकी भक्ति करे कोई सुफल प्राप्त नहीं हो सकता। इनका महत्त्व

(शेष पृष्ठ २५८ पर)

सम्पादकीय

तीर्थ क्षेत्रों का विकास

पू० आचार्य श्री दयासागर म० ने अपने वर्ष १९९७ के वर्षावास में श्री सिद्ध क्षेत्र पावागढ़ (गुजरात) से प्रसारित अपने एक परिपत्र में उत्तर भारत के दिगम्बर जैन तीन क्षेत्रों की वर्तमान दुर्व्यवस्था पर घोर चिन्ता प्रकट करते हुए उसके लिए इन क्षेत्रों के असंयमी गृहस्थ पदाधिकारियों के कुप्रबन्ध को दोषी ठहराया है तथा स्थिति को सुधारने के लिये उन्होंने इन पर भी दक्षिण की भांति भट्टारक पीठें स्थापित करके संयमी भट्टारकों को इनका प्रबन्ध सौंप देने का सुझाव दिया है।

हमने **शोधादर्श**-३४ (मार्च १९९८) में इस सुझाव की समीक्षा करते हुए यह स्पष्ट करने का प्रयास किया था कि दक्षिण भारत की भट्टारक पीठों के अधिकांश मठाधीश वर्तमान में अपनी समाचारी व जीवन शैली से अपनी जो छवि प्रस्तुत कर रहे हैं, उससे भट्टारक संस्था दक्षिण में ही अप्रासंगिक होती जा रही है तथा उत्तर भारत की जागरूक एवं सुशिक्षित समाज धार्मिक आस्था के केन्द्र अपने तीर्थ क्षेत्रों पर भट्टारक पीठों की स्थापना कर क्षेत्रों को भट्टारकों के एकाधिकार में सौंपने को कभी तैयार नहीं होगी। तीर्थ क्षेत्रों के विकास की समस्या के निदान के और भी उपाय हैं तथा इस लेख में हम ऐसे ही कुछ उपायों की चर्चा कर रहे हैं।

(पृष्ठ २५७ का शेष)

तो एक बलवान शत्रु अथवा मित्र जैसा ही समझना चाहिए। मनुष्य को इन पर निर्भर न रह कर स्वावलम्बन का आश्रय लेना चाहिए।'

उपरोक्त कथोपकथन एक कथा में आये हैं और बहुत करके काल्पनिक हो सकते हैं, किन्तु कथाकार ने इनके माध्यम से उक्त देवी-देवताओं की पूजा-उपासना तथा एक धार्मिक जैन व्यक्ति की तद्विषयक मनोवृत्ति का अति सुन्दर स्पष्टीकरण किया है, जो जैन सिद्धान्त एवं संस्कृति की आत्मा के सर्वथा अनुरूप है। ★

(१) **क्षेत्र की सुरक्षा एवं पुरातत्त्व के महत्त्व की मूर्तियों एवं कलाकृतियों का समुचित संरक्षण**—हमारे तीर्थ क्षेत्रों एवं प्राचीन मन्दिरों में पांच-छह सौ वर्ष या उससे भी अधिक प्राचीन मूर्तियों एवं कलाकृतियों का उपलब्ध होना एक सामान्य बात है। स्फटिक मणि एवं अष्ट धातु की मूर्तियां तथा सोने-चांदी के बहुमूल्य उपकरण भी अनेक मन्दिरों में बड़ी संख्या में मिलेंगे। फलस्वरूप ये क्षेत्र व मन्दिर मूर्ति-तस्करों व चोरों के विशेष आकर्षण केन्द्र बने रहते हैं तथा तस्करी व चोरी की एकाधिक घटना आए दिन जैन समाचार पत्रों तथा राष्ट्रीय दैनिकों में छपती रहती है। हाल ही में (गत २४-२५ अप्रैल की रात्रि में) मूर्ति-तस्करों द्वारा मध्य प्रदेश के गोला-कोट क्षेत्र से एक हजार वर्ष प्राचीन ४६ भव्य पाषाण मूर्तियों के सर काट कर ले जाने की घटना की भीषणता ने तो समस्त जैन समाज को झकझोर कर रख दिया तथा तीर्थ क्षेत्रों व प्राचीन मन्दिरों की सुरक्षा के विषय में गम्भीर चिन्तन करने को विवश कर दिया। दि० ११-१२ जुलाई १९९८ को झांसी (करगुवां क्षेत्र) में श्री भा० दि० जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी के कार्याध्यक्ष श्री देव कुमार सिंह कासली-वाल की अध्यक्षता में एक 'बुन्देलखण्ड तीर्थ रक्षा सम्मेलन' का भी आयोजन किया गया जिसमें कतिपय महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किये गये तथा प्राचीन तीर्थों की सुरक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता देने पर बल दिया गया।

एक वरिष्ठ इंजीनियर ने सुझाव दिया है कि जहां भी पुरा-तत्त्व के महत्व की प्राचीन मूर्तियां स्थापित हैं उनकी वेदियों के कक्षों की छत व दीवारों को कुशल इंजीनियरों की देख-रेख में लोहे की सरियों, सीमेन्ट व कंक्रीट के योग से ऐसा मजबूत कर दिया जाय कि कोई चोर आसानी से सेंध न लगा सके तथा उन कक्षों के प्रवेश द्वार बैंकों के स्ट्रांग रूम जैसे मजबूत डबल लॉक में कर दिए जाएं; अन्य बहुमूल्य (रत्न व धातु) प्रतिमाओं को उनकी वर्तमान वेदियों से हटाकर विशेष रूप से निर्मित कराये गए स्टील के मजबूत सेफ़ में रखा जाए।

राज्य संग्रहालय के एक भूतपूर्व वरिष्ठ अधिकारी ने सुझाव दिया है कि प्राचीन मूर्तियों की तस्करी रोकने के लिये यह अत्यावश्यक है कि पुरातत्त्व-तस्करी निरोधक कानून में कठोर दण्ड की व्यवस्था की जाये।

ये दोनों सुझाव उचित ही है अलावा इसके कि पहला बहुव्यय साध्य है तथा जबकि दूसरे का क्रियान्वयन केन्द्र सरकार पर निर्भर करता है तथा जब कभी कानून में समुचित दण्ड की व्यवस्था हो भी जायेगी तो उसका उपयोग तो तभी हो सकेगा जब तस्कर अपराधी पकड़े जायेंगे। किन्तु आज स्थिति यह है कि अधिकांश मामलों में अपराधी पकड़े ही नहीं जाते। गोलाकोट जैसे क्षेत्रों में संरक्षण-सुरक्षा की समस्या का समाधान पहले सुझाव के क्रियान्वयन से भी नहीं होता। पहाड़ी पर स्थित दो परकोटों से घिरे क्षेत्र के मन्दिर की छत या दीवारों में न तो सेंध ही लगाई गई और न कोई ताला ही तोड़ा गया फिर भी मूर्ति तस्करी की यह भीषण घटना घट गई।

हमारी समझ में गोलाकोट क्षेत्र पर हुई मूर्ति-तस्करी की इस भयंकर घटना का एक प्रमुख कारण उस क्षेत्र पर चौकीदारी की नियमित एवं समुचित व्यवस्था का न होना है। क्षेत्र पर कोई व्यक्ति नहीं रहता। गोलाकोट की पहाड़ी की तलहटी में बसे ढेबर गांव में भी कोई जैन परिवार नहीं रहता। क्षेत्र का एकमात्र वैतनिक पुजारी-कर्मचारी भी इस गांव में नहीं रहता तथा कहीं और से ही (कदाचित् १६ कि०मी० दूर खनियाधाना से जहां जैनों की समृद्ध बस्ती है तथा इस क्षेत्र के अधिकांश पदाधिकारी भी रहते हैं) आकर क्षेत्र पर पूजा अर्चना व सफाई आदि करता है।

भा० तीर्थ क्षेत्र कमेटी को चाहिए कि वह देश के सभी पुरातत्त्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण तीर्थ क्षेत्रों का सुरक्षा की दृष्टि से व्यापक सर्वे कराकर एक मास्टर प्लान बनाए। बताया जाता है कि अकेले बुन्देलखण्ड क्षेत्र में गोलाकोट जैसे १०० के लगभग मध्य युगीन प्राचीन मन्दिर हैं जो आज घने जंगलों के बीच में स्थित नजर

आते हैं या जिनके आस-पास की बस्ती में जैन परिवार नहीं रहते। ऐसे क्षेत्रों की सुरक्षा के लिये यह अत्यावश्यक है कि उन में **चौकीदार की समुचित व्यवस्था** सुनिश्चित की जाय तथा क्षेत्र के वैतनिक कर्मचारियों को क्षेत्र पर ही स्थायी रूप से रहने के लिये बाध्य किया जाय, भले ही इसके लिए उन्हें कुछ अतिरिक्त वेतन देना पड़े। इस कार्य के लिए भा० दि० जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी तथा तीर्थ संरक्षिणी महासभा को क्षेत्र कमेटियों को समुचित आर्थिक सहयोग देना चाहिए।

जिन क्षेत्रों व प्राचीन मन्दिरों की सुरक्षा व्यवस्था (चौकीदारी सहित) सुदृढ़ करना सम्भव न हो तो उसका मोह त्याग कर वहां की पूजनीय प्रतिमाओं को हटाकर निकट की किसी जैन बहुल बस्ती के श्री मन्दिर जी में (यदि सम्भव हो तो उस क्षेत्र के नाम से एक पृथक कक्ष में) विराजमान कर देना चाहिए ताकि उनकी पूजा-प्रक्षाल व सार-संभाल जैन उपासकों द्वारा नियमित रूप से होती रहे। क्षेत्र/मन्दिर की अन्य पुरा-सम्पदा (खण्डित मूर्तियों सहित) किसी जैन संग्रहालय में स्थानान्तरित कर दी जानी चाहिए। इस समय उत्तर भारत में ही कम से कम चार जैन संग्रहालय—यथा देवगढ़, बानपुर, उज्जैन व खजुराहो में—कार्यरत है। इस प्रकार समाप्त किये गये क्षेत्र/मन्दिर की अचल सम्पत्ति (भूमि, भवन आदि) स्थानीय या निकटस्थ बस्ती की पंचायत को उस स्थान या क्षेत्र के नाम से ही किसी सार्वजनिक हित के कार्य (औषधालय, विद्यालय आदि) में उपयोग करने के लिए सौंप देना चाहिए तथा ऐसी किसी संस्था की स्थापना में यथा सम्भव आर्थिक सहयोग भी करना चाहिए।

अभी हाल ही में पू० आचार्यश्री विद्यासागर म० ने अपने इस वर्ष के चातुर्मास स्थल भाग्योदय तीर्थ (सागर) में एक चर्चा में स्पष्ट रूप से कहा है कि **असुरक्षित मूर्तियों को अन्यत्र ऐसे स्थानों पर स्थानान्तरित करना गलत नहीं है जहां उनकी पूजा-अर्चना नियमित रूप से होती रहे।**

तीर्थ क्षेत्रों/प्राचीन मन्दिरों से मूर्ति तस्करी की रोकथाम के लिए यह भी अत्यावश्यक है कि **१०० वर्ष से अधिक प्राचीन सभी मूर्तियों का पंजीकरण करा लिया जाय** तथा सभी मूर्तियों का पूरा विवरण (फोटो सहित) एक रजिस्टर में अंकित करके रखा जाय ताकि चोरी चले जाने तथा कालान्तर में उसके बरामद होने पर उसकी शनाख्त कर पुनः प्राप्त करने में कठिनाई न हो।

(२) **यातायात की सुविधा**—हमारे अनेक तीर्थ क्षेत्र जो कभी जैन बहुल समृद्ध बस्तियों से घिरे थे, आज कालचक्र के प्रभाव से **रेलवे स्टेशन या राज मार्ग से दूर** जंगलों के बीच या छोटी-मोटी बस्तियों में स्थित रह गये हैं। राजमार्ग/रेल स्टेशन से जोड़ने वाले सम्पर्क मार्ग भी अनेक के अभी तक पक्के निर्मित नहीं हो पाये हैं। परिणामस्वरूप क्षेत्र तक पहुंचने में यात्री को खासी कठिनाई का सामना करना पड़ता हैं। अतः क्षेत्रों पर यात्रियों की आवाजाही अल्प ही रहती है तथा क्षेत्र की आय भी अत्यन्त सीमित रहती है जिसके कारण क्षेत्र के जीर्णोद्धार व विकास कार्य में भी यथेष्ट प्रगति नहीं हो पाती। जहां कहीं ऐसी स्थिति हो वहां की क्षेत्र कमेटी तथा आंचलिक तीर्थ क्षेत्र कमेटी को राज्य सरकार से लिखा-पढ़ी करके क्षेत्र के पहुंच मार्ग को यथा शीघ्र पक्का निर्मित करवा लेना चाहिए। उत्तर प्रदेश में इस प्रकार की लिखा-पढ़ी करके प्रायः ऐसे सभी तीर्थ क्षेत्रों के सम्पर्क मार्गों को राज्य सरकार से पक्का निर्मित करा लिया गया है। ऐसे क्षेत्रों पर क्षेत्र कमेटी द्वारा निकटस्थ रेल-स्टेशन/बस स्टाप तक एक मिनी बस/मेटाडोर सर्विस भी नियमित रूप से चलाई जानी चाहिए। भा० दि० जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी/तीर्थ संरक्षिणी महासभा को ऐसे क्षेत्रों को मिनी बस/मेटाडोर खरीदने के लिये समुचित आर्थिक योगदान करना चाहिये। किन्तु इस सर्विस के संचालन का व्यय तो क्षेत्र को ही वहन करना होगा, यद्यपि व्यय का बहुभाग या पूरा का पूरा यात्रियों से वसूल किया जा सकेगा।

हमारे कतिपय प्रमुख क्षेत्रों के निकटस्थ रेलवे स्टेशन पर कई महत्वपूर्ण रेलगाड़ियां नहीं ठहरती जिससे यात्रियों को असुविधा

होती है। एक तीर्थ भक्त सुश्रावक को शिकायत है कि हमारे सर्वाधिक महत्वपूर्ण तीर्थ क्षेत्र श्री सम्मेद शिखर जी के निकटस्थ ईसरी-पार्श्वनाथ स्टेशन पर आज भी पुरुषोत्तम एक्सप्रेस, राजधानी एक्सप्रेस तथा अन्य कई ट्रेनें नहीं रुकती हैं जिससे यात्रियों को असुविधा होती है। श्री पारसनाथ पहाड़ी समेद शिखर प्रबन्धन समिति को भा० दि० जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी के सहयोग से इन ट्रेनों को ईसरी-पार्श्वनाथ स्टेशन पर रुकवाने के लिये रेल मन्त्रालय से आवश्यक कार्यवाही करने का प्रयास करना चाहिए। ऐसे अन्य क्षेत्रों की प्रबन्ध समितियों को भी इसी प्रकार की कार्यवाही करनी चाहिए।

(३) **यात्री सुविधा**—क्षेत्र पर यात्रियों के ठहरने की पर्याप्त सुविधा उपलब्ध होनी चाहिए। धर्मशालाएं स्वच्छ, चोरी-चकारी व पशुओं के अतिक्रमण से सुरक्षित, तथा स्वच्छ स्नानागार-शौचालय व स्वच्छ पेय जल की पर्याप्त सुविधा होनी चाहिये। कमरे स्वच्छ व हवादार हों तथा जहां कहीं क्षेत्र तक बिजली आई हो, वहां सभी कमरों में बिजली-पंखों की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। यह भी वांछनीय है कि अधिकाधिक कमरे स्नानागार व शौचालय की सुविधा युक्त हों। कमरों का किराया सुविधाओं के अनुरूप वाजिब तो हो पर इतना अधिक न हो कि यात्री को होटल जैसा महसूस हो या कम सम्पन्न यात्रियों को भारी महसूस हो। दक्षिण के एक सुप्रसिद्ध क्षेत्र के विषय में एक महिला यात्री ने निम्न शब्दों में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की—

"धर्मशाला में गन्दगी रहती है। गाय, कुत्ते, सुअर आदि कमरे में घुस आते हैं।.....पानी की मोटर, गर्म पानी का बायलर आदि सब टूटे पड़े हैं, कमरों में पंखे भी नहीं हैं। इतनी अस्वच्छ धर्मशाला, **तिस पर भी कमरे का किराया रु० ४०/- प्रति दिन है।**" जाहिर है कि यदि यात्री क्षेत्र पर चार दिन रुकने का इरादा करके आया होगा तो भी उपरोक्त असुविधाओं को देख कर तुरन्त वापस होना चाहेगा।

हमारा यह भी मानना है कि क्षेत्र पर सभी तीर्थ यात्रियों को सभी सुविधा यथा सम्भव समान रूप से उपलब्ध होनी चाहिएं तथा अधिक सम्पन्न यात्रियों के लिए air-conditioned rooms व luxury suites का निर्माण नहीं किया जाना चाहिये ताकि धर्म क्षेत्र पर तीर्थ भक्तों में ऊँच-नीच की भावना पैदा न हो। तीर्थ-क्षेत्र धर्म-क्षेत्र हैं जहां केवल धर्माचरण को ही प्रधानता दी जानी चाहिए, धन को नहीं।

(४) **पूजा सामग्री की उपलब्धि**—क्षेत्र कमेटी को पूजा सामग्री की वाजिब दामों पर यात्रियों को सुलभ कराने की व्यवस्था भी करानी चाहिए।

(५) **चादर-गद्दे आदि की व्यवस्था**—आज के रेल-बस के भीड़ भरे सफ़र में यात्री को अधिक सामान ले कर चलने में भारी असुविधा का सामना करना पड़ता है। अतः अब अनेक क्षेत्रों पर चादर, गद्दे, कम्बल आदि पर्याप्त मात्रा में यात्रियों को उचित किराये पर दिये जाने के लिए उपलब्ध किये जाने लगे हैं। इससे उन क्षेत्रों की लोकप्रियता बढ़ी है तथा यात्रियों की संख्या में वृद्धि हुई है।

(६) **भोजन की सुविधा**—अब कई क्षेत्रों पर उदारमना श्रेष्ठियों के सहयोग से निःशुल्क या बाजार दर से कम मूल्य पर यात्रियों को शुद्ध सात्विक भोजन की सुविधा उपलब्ध कराई जा रही है। इससे निश्चित ही उनकी लोकप्रियता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। इसका ध्यान रखा जाना आवश्यक है कि भोजन शाला स्वच्छ और आकर्षक हो ताकि भोजन करने वालों को वहां बैठ कर भोजन करने में आनन्द का अनुभव हो। तीर्थ राज श्री सम्मेद शिखर जी की दिगम्बर जैन धर्मशालाओं में संचालित भोजनशालाओं के विषय में अपना क्षोभ प्रकट करते हुए एक तीर्थ भक्त यात्री लिखते हैं कि—

"भोजन शालाएं अंधकार, धुंएं, पुराने फ़र्नीचर, तथा फीके पीले रंग युक्त हैं। इनमें पर्याप्त लाइट, सफेद डिस्टेम्पर, अच्छा फर्नीचर एवं धुंआँ निकासी की उचित व्यवस्था की जानी चाहिये।"

(शेष पृष्ठ २९२ पर)

जीवन की निष्कपटता ही ऋजुता है

—डा० भागचन्द्र जैन 'भास्कर'

उत्तम आर्जव का तात्पर्य है आत्मा के ज्ञायक स्वरूप में कपट का भाव उत्पन्न न होने देना—उसमें पूरी सरलता, ऋजुता आ जाना। मृदुता आ जाने के बाद यह ऋजुता आती है। आचार्य कुन्दकुन्द ने **द्वादशानुप्रेक्षा** में "कुटिल भाव को छोड़ कर निर्मल हृदय से आचरण करना" को आर्जव कहा है। उमास्वामी, पूज्यपाद, अकलंक, अभयदेवसूरि, सिद्धसेनसूरि आदि आचार्यों ने इसी परिभाषा को स्वीकार किया है। इन सभी परिभाषाओं के समग्र चिन्तन से यह तथ्य निकलता है कि मन, वचन, काय में किसी भी प्रकार की वक्रता न होना और आचरण शुद्ध होना, आर्जव है। इसी को **तत्त्वार्थवार्तिक** में "योगस्यावक्रता आर्जवम्" कहा गया है।

आर्जव का सम्बन्ध विशुद्ध धर्म से है। धर्म प्रतिस्रोत का मार्ग है, एकान्त साधना का मार्ग है, भीड़ में उसका पालन नहीं किया जा सकता। आत्मनिरीक्षण के साथ ही मन में ऋजुता आ जाती है। "सोइ उज्जुयभूयस्स" अर्थात् शुद्धि उसी की होती है जो ऋजु—सरल होता है। शुद्ध धर्म का पालन व्यक्ति को इतना सरल बना देता है जितना कि छोटा बच्चा होता है। इस सरलता के मानदण्ड अपने-अपने हो सकते हैं पर उसे सभी चिन्तक वक्रता के अभाव में देखते हैं।

पदार्थ के प्रति आसक्ति ही कपट की जननी है। इसीलिए उस आसक्ति को कम करने के लिए आचार्यों ने धर्मोपदेश दिया है। संसारी व्यक्ति को आसक्ति से ही भय उत्पन्न होता है। एक आसक्ति से दूसरी आसक्ति उठ खड़ी होती है और कोई भी आसक्ति सन्तुष्ट नहीं हो पाती। राजस्थानी कहावत है—चोर ने तूंबे चुराये, नाले में उनको डुबोना चाहा पर वह एक डुबोता तो दूसरा ऊपर आ जाता। यही स्थिति आसक्ति की होती है। आसक्ति के सन्तुष्ट न होने पर व्यक्ति मायावी हो जाता है और उसकी कथनी-करनी में अन्तर आ जाता है।

कपट भाव से मानसिक तनाव बढ़ता है और प्रतिक्रिया जन्म लेती है। प्रतिक्रिया से ही झूठ, चोरी, हिंसा, कपट आदि दुर्गुण आ जाते हैं और संघर्ष शुरू हो जाता है। संवेदन जितना तीव्र होगा प्रतिक्रिया उतनी ही गहरी होगी। यह गहराई तब तक कम नहीं होगी जब तक भीतरी जागरण नहीं होगा। भीतरी जागरण से ही सन्यासी को स्वर्ण से वितृष्णा होती है और वह झोपड़ी में रहता है जबकि राजा या गृहस्थ उससे राग करता है और प्रासाद में रहता है।

हमारी चेतना चार स्तरों से गुजरती है—इन्द्रिय, मन, बुद्धि, और अनुभव। अनुभव की सघनता ऋजुता को पैदा करती है जिससे व्यक्ति अपनी भूल स्वीकार करने को तैयार हो जाता है। इसके लिए उसकी तीक्ष्ण प्रज्ञा, पैनी अन्तर्दृष्टि और सबल मनोबल अधिक काम करता है। कपट भाव की बुराइयों को समझ कर व्यक्ति मायावी स्वभाव से मुक्त होने का मन कर लेता है, भले ही वह वंशानुगत क्यों न हो।

मायावी स्वभाव वाला तिर्यञ्चों में पैदा होता है और वह स्वभाव वंशानुगत होता है। वहां विवेकहीनता रहती है। मानव में वह वंशानुगत नहीं होता। वह तो विवेक शक्ति के उपयोग न कर पाने के कारण छल-कपट किया करता है। इस छल-कपट या वक्रता को अधिकता के क्रम से चार श्रेणियों में विभक्त किया जाता है—बांस की जड़, मेढ़े के सींग, गोमूत्र और खुरपी। इसी तरह ऋजुता को चौभंगी द्वारा समझाया जा सकता है—सरल, सरलवक्र, वक्रसरल, और वक्रवक्र।

स्वच्छ जल में जिस तरह कंकड़ डालने या फेंकने से जो चंचलता निर्मित होती है उसमें अपनी प्रतिकृति नही देखी जा सकती, उसी तरह मायावी स्वभाव वाला व्यक्ति स्वयं को नहीं देख पाता। उसमें मायाचारी, धोखाधड़ी, आशंका, भय, अविश्वास, झूठ बोलना आदि की असत् प्रावृत्तियां स्वयमेव आ जाती हैं। उसकी ये प्रवृत्तियां अनार के दाने की तरह अन्दर भरी रहती हैं।

किसी संस्कृत कवि ने बड़ा अच्छा कहा है—"सन्धने सरला सूची, वक्रा छेदाय कर्त्तरी।" इसका तात्पर्य है कि सुई सरल और सीधी होती है, इसलिये वह टुकड़ों को जोडती है, एक करती है। परन्तु कैंची वक्र अर्थात् टेढ़ी होती है, इसलिए वह काटने का काम, अलग करने का काम करती है। इसी तरह सरल स्वभावी दो मनों को जोड़ता है, परस्पर प्रेम भाव स्थापित करता है, पर कुटिल स्वभावी व्यक्ति दो मनों को अलग-अलग कर देता है।

कपटी मनुष्य का मन निर्मल नहीं होता। उसके अन्दर प्रकाश पुन्ज हो ही नहीं सकता। हमारे स्वभाव में सरलता होने से हमें काय की ऋजुता, वाणी की ऋजुता, तथा कथनी और करनी में समानता प्राप्त होती है। मायाचारी कुटिल स्वभावी को कभी मानसिक शान्ति नहीं मिल सकती। उसे संसार में कुछ भी स्पष्ट नहीं हो पायेगा क्योंकि अविश्वास के कारण छल-कपट से उसकी आत्मा भटकती रहती है और भटकती रहेगी। उसका स्वभाव कुत्ते की पूंछ जैसा वक्र रहता है जो बारह वर्ष के बाद भी अंगूठी से टेढ़ी ही निकलेगी। वह अपना स्वभाव छोड़ ही नहीं पाता और उसी स्वभाव से पतित हो जाता है।

हमारे निर्मल और वक्र भावों का बेतार के तार जैसा संबंध होता है। उसे सामने खड़ा व्यक्ति समझ लेता है। चन्दन की लकड़ी का व्यापारी अपने मित्र राजा की मृत्यु की प्रतीक्षा करता रहा ताकि उसकी चन्दन की लकड़ी बिक सके। राजा को उसकी भावनाओं पर सन्देह हो गया। फलतः वह पकड़ा गया। उसी तरह यह उदाहरण भी प्रचलित है जिसमें एक पथिक किसी वृद्धा की पोटली पहले तो अपने सिर पर नहीं लेता पर बाद में वह लेने की आकांक्षा व्यक्त करता है इसलिये कि उसमें रखे हुए माल-धन को वह हड़पना चाहता था। वृद्धा ने उसके भावों को परख लिया और उसे पोटली देने से मना कर दिया।

मायावी का स्वभाव बगुला जैसा होता है। देखने में तो वह सफेद और शुद्धाचरण वाला दिखाई देता है पर व्यवहार में वह बड़ा कपटी और हिंसक रहता है। दूज का चन्द्रमा भी इसी तरह वक्र-चन्द्र कहा जाता है। जैसे-जैसे उस चन्द्रमा की वक्रता कम होती जाती है वह पूर्णता को प्राप्त हो जाता है और पूर्ण चन्द्रमा कहलाने लगता है।

कपटी शल्यों के संसार में जीता है। वह शल्य तीन प्रकार की होती है— माया, मिथ्या और निदान। वक्रता इन तीनों की आधार भूमि है। कृष्ण, नील और कापोत लेश्या से उसका सारा जीवन भरा रहता है जिसमें दूसरे को हानि पहुंचाना ही मुख्य ध्येय होता है।

आज राजनीति आहत हो रही है। वहां जबर्दस्त कुटिलता और भ्रष्टाचार पनप रहा है। राजनीति आज एक शुद्ध व्यवसाय हो गया है। समाज उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। अतः आध्यात्मिक वातावरण का निर्माण किया जाना चाहिए।

साधक को आर्जव धर्म की साधना धर्म के यथार्थ रूप तक पहुंचा देती है। बनारसीदास और एकनाथ ने, कहा जाता है, चोरों के आने पर अपना धन स्वयं दे दिया। उनकी वह साधना आर्जव धर्म की साधना थी जहां अनासक्त और निस्संग भाव पनप चुका था। यही जीवन की निष्कपटता है।

——

"वीर विनोद" में वर्णित जैन धर्म

—श्री प्रणव देव

जिन उत्कृष्ट साहित्यिक, धार्मिक एवं लौकिक ग्रन्थों से राजस्थान के गौरवशाली अतीत की जानकारी मिलती है, उनमें **वीर विनोद** का महत्वपूर्ण स्थान है। **वीर विनोद** मेवाड़ के महाराणा सज्जन सिंह (१८७४–१८८४ ई०) के समकालीन महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास का पाँच भागों में प्रकाशित ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की शुरुआत महाराणा शम्भु सिंह के समय में हुई। श्यामलदास के अनुसार सन् १८४७ ई० में वे अपने पिता काइम सिंह के साथ महाराणा स्वरूप सिंह की सेवा में आये, तथा बाद में महाराणा शम्भु सिंह के समय में इन्हें राजनैतिक उत्कर्ष प्राप्त हुआ। महाराणा सज्जन सिंह ने इन्हें अपना सलाहकार एवं मुख्यमंत्री बना लिया। श्यामलदास ने शिलालेखों, ताम्रपत्रों, प्रशस्तियों और मूल दस्तावेजों के रूप में प्राप्य सामग्री एकत्र की, तथा कई वर्षों के निरन्तर प्रयास एवं परिश्रम के पश्चात सन् १८९२ ई० में **वीर विनोद** का लेखन कार्य पूरा किया। तब श्यामलदास के विरोधियों द्वारा तत्कालीन महाराणा फतेह सिंह को श्यामलदास के ग्रन्थ में महाराणाओं का यथोचित सम्मान सहित वर्णन न होने की बात कहकर भड़काया गया। परिणामतः महाराणा फतेह सिंह ने इस ग्रन्थ की सभी प्रतियाँ एवं सम्बन्धित सामग्री अपने कब्जे में कर ली। इस प्रकार वीर भूमि राजस्थान का ऐतिहासिक महाग्रन्थ राजसी ताले में बन्द होकर रह गया। स्वाधीनता के उपरान्त जीर्ण-शीर्ण अवस्था में यह उपलब्ध हुआ। इसका प्रकाशन बी० आर० पब्लिशिंग कार्पोरेशन, दिल्ली, द्वारा किया गया। इस महान कृति में मेवाड़ ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण राजस्थान की झलक दिखायी देती है।

वीर विनोद के प्रथम भाग में श्यामलदास ने राजस्थान के तत्कालीन समाज की जाति व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए उदात्त जैन धर्म एवं मेवाड़ के एक प्रमुख जैन तीर्थ स्थल का भी वर्णन किया है।

जैन धर्म को धर्मावलम्बियों की संख्या के आधार पर वीर विनोद में मेवाड़ के तीसरे प्रमुख धर्म के रूप में वर्णित किया गया है। श्यामलदास ने 'श्वेताम्बर' को 'सितम्बरी' कहा है तथा इनके मुख्य धार्मिक ग्रन्थ के रूप में बत्तीस (३२) सूत्रों को माना है। नवकार मन्त्र का महत्त्व उसी प्रकार प्रतिपादित किया गया है, जिस प्रकार हिन्दू धर्म में गायत्री मन्त्र का। श्वेताम्बरों को पुनः दो सम्प्रदायों में विभाजित किया गया है, एक मूर्ति पूजक और दूसरा अमूर्ति पूजक। मूर्ति पूजकों में जती, समेगी व महात्मा आदि रखे गये हैं, तथा अमूर्ति पूजकों में ढूंडिया साधु हैं। श्वेताम्बर विचारधारा को मानने वालों में राजपूताने के ओसवाल महाजनों की संख्या सर्वाधिक बताई गई है। लूंका गच्छ की उत्पत्ति के विषय में कहा गया है—"विक्रमी संवत् के सोलहवें शतक के शुरू में जती लोगों में वैराग्य न्यून हो गया था, तब गुजरात में 'लूंका मेहता' ने अपने सूत्र ग्रन्थों के अनुसार एक नया फिर्का चलाया, जिसका नाम 'लूंका गच्छ' प्रसिद्ध हुआ, और उसी में से ढूंडिया साधु निकले जिनके २२ गिरोह होकर २२ टोले कहे जाते हैं। इन टोलों में से हर एक टोले में एक मुखिया याने आचार्य होता है। जब इन २२ गिरोहों का चाल-चलन शिथिल होने लगा, तब रघुनाथ ढूंडिया के टोले में से उसी के शिष्य भीखम ने विक्रमी १८१५ (हिजरी ११७२ व ई० १७५८) में एक नई शाखा निकाली, और उसके तेरह शिष्य होने के कारण 'तेरह पंथियों' की बुनियाद पड़ी। भीखम आचार्य विक्रमी १७५८ (हि० ११४१ = ई० १७०१) में पैदा हुआ और उसने विक्रमी १८०८ (हि० ११६४ = ई० १७५१) में साधु का भेष लिया। विक्रमी १८१५ (हि० ११७२ = ई० १७५८) तेरह पंथियों का फिर्का चलाया, और विक्रमी १८६० (हि० १२१८ = ई० १८०३) में वह मर गया। उसके बाद उसका शिष्य भारमल्ल गद्दी पर बैठा, और विक्रमी १८७८ (हि० १२३६ = ई० १८२१) में वह गुजर गया। उसके पीछे रायचन्द गद्दी पर बैठा, जो विक्रमी १९०८ (हि० १२६७ = ई० १८५१) में परलोक गामी हुआ। उसके बाद जीतमल आचार्य

हुआ, जिसके विक्रमी १९३६ (हि० १२९६ = ई० १८७९) में मर जाने पर उसका क्रमानुयायी मेघराज हुआ, जो अब विद्यमान है।" उपर्युक्त जानकारी के स्रोत के विषय में कुछ नहीं लिखा गया है।

दिगम्बर शाखा के आचार्यों को "भट्टारक" के नाम से अभिहित किया गया है, और उनके कठोर साधनामय जीवन का वर्णन किया गया है। तत्कालीन दिगम्बर आम्नाय का मुख्य क्षेत्र कर्णाटक प्रदेश बताया गया है। श्वेताम्बर और दिगम्बर के मध्य मतभेदों का वर्णन भी किया गया है। श्वेताम्बर आम्नाय के बारह अंग और बाकी उपांग मिलाकर ३२ सूत्र बताये गये हैं, जिन्हें दिगम्बरों द्वारा न माने जाने का उल्लेख किया गया है। श्यामल दास ने श्वेताम्बर और दिगम्बरों में ८४ बातों में अन्तर माना है।

वीर विनोद में मेवाड़ में स्थित धुलेव गाँव में ऋषभदेव के मन्दिर, जो कि उदयपुर से दक्षिण की ओर खेरवाड़ा की सड़क पर पड़ता है, का वर्णन बड़ी श्रद्धा के साथ किया गया है। श्यामलदास के अनुसार धुलेव गाँव के इस जैन मन्दिर को जैन तथा वेदानुयायी दोनों ही पूज्य एवं पवित्र तीर्थ स्थल मानते हैं। जहाँ वेदानुयायी हिन्दू, इस मूर्ति को विष्णु के दशावतारों में समझ कर इसकी पूजा करते हैं, वहीं जैन धर्मावलम्बी इसे ऋषभदेव के रूप में पूजते हैं। इस मन्दिर की केसर चढ़ाने की अनोखी परम्परा का वर्णन करते हुए इस मन्दिर का केसरियानाथ के नाम से भी उल्लेख किया गया है। मूर्ति का रंग काला बताया गया है और इसे श्रद्धालुओं द्वारा "काला जी" कहने की परम्परा का भी उल्लेख है। आस-पास के भील केसरिया नाथ पर बड़ी श्रद्धा रखते हैं। भील सौगन्ध के रूप में केसर चढ़ाकर शपथ भी इन्हीं ऋषभदेव जी के सामने लेते हैं, और इस बात का प्रण करते हैं कि वे फिर कभी नहीं बदलेंगे। मन्दिर में कुछ प्रशस्तियों के होने का भी उल्लेख है जिनके आधार पर मन्दिर के जीर्णोद्धार की तिथि विक्रमी संवत् की १५वीं सदी के प्रारम्भ तक होना श्यामलदास ने माना है।

सारांशत: **वीर विनोद** में १९वी शताब्दी के मेवाड़ में प्रचलित जैन धर्म का संक्षिप्त, तथापि सारगर्भित, उल्लेख हुआ है। ★

व्यास कृत हरिवंश पुराण एवं जिनसेन कृत हरिवंश पुराण के आलोक में श्री कृष्ण चरित

—कु० नीलम जैन

भारतीय चिन्तन में कुछ महापुरुषों की कल्पना की गयी है। उन महापुरुषों को भारतीय साहित्य की सभी विचार धाराओं में किसी न किसी रूप में मान्यता प्रदान की गयी है। इन महापुरुषों में राम और कृष्ण के चरित का वर्णन ईस्वी सन् के प्रारम्भ से प्राप्त साहित्यिक अनुश्रुतियों में प्राप्त होता है। ब्राह्मणीय परम्परा में इन्हें विष्णु के अवतार के रूप में चित्रित किया गया है। श्रमण परम्परा में अवतारवाद न मानने पर भी इनकी उपेक्षा नहीं की गयी है और इनकी गणना जैन त्रेसठ शलाका पुरुषों में की गई है। बौद्ध साहित्य में कृष्ण के चरित का वर्णन प्राप्त नहीं होता है। जैन परम्परा के दोनों आम्नाय कृष्ण के चरित का वर्णन विस्तृत रूपमें करते हैं। श्वेताम्बर आम्नाय के छठे श्रुताङ्ग **णायाधम्मकहाओ** तथा आठवें **अन्तगडदसाओ** में कृष्ण का उल्लेख है। दिगम्बर आम्नाय में त्रिषष्ठिशलाका पुरुषों में इनकी गणना की गयी है। यहाँ कृष्ण का वर्णन नवम् नारायण या वासुदेव के रूप में है। पुन्नाटसंघीय आचार्य जिनसेन द्वारा ७८३ ई० में संस्कृत में रचित **हरिवंश पुराण** में बाइसवें जैन तीर्थंकर नेमिनाथ के चचेरे भाई होने से कृष्ण का अत्यधिक उल्लेख प्राप्त होता है। व्यासकृत **हरिवंश पुराण, महाभारत** का एक भाग है। यहाँ कृष्ण के जो प्रसंग **महाभारत** में छूट गये थे उनका विस्तृत वर्णन है। **महाभारत** में कृष्ण का गौण रूप में वर्णन किया गया है क्योंकि वहाँ वे मुख्यत: पाण्डवों और कौरवों के सहायक के रूप में थे, परन्तु **हरिवंश पुराण** की रचना कृष्ण की ही वीरता पूर्ण लीलाओं का वर्णन करने के उद्देश्य से की गई है।

दोनों पुराणों में कृष्ण के चरित का विशद वर्णन है और न्यूनाधिक अन्तर लिये हुये कृष्ण की प्राय: सभी लीलाओं का समावेश है। जन्म के विषय में यह भेद स्पष्ट है कि व्यासकृत **हरिवंश पुराण** के कृष्ण देवकी की आठवीं सन्तान हैं और विष्णु के पूर्ण अवतारी है,

जब कि जिनसेन कृत **हरिवंश** के कृष्ण देवकी की सातवीं संतान हैं और त्रेसठ शलाका पुरुषों में नवम् वासुदेव या नारायण हैं। शलाका पुरुष संसार में विशिष्ट अतिशयों से सम्पन्न पुरुष के रूप में जन्म लेते हैं। उपरोक्त दोनों पुराण गाथाओं के आलोक में श्री कृष्ण के चरित को निम्नलिखित विषय-विभाग के अन्तर्गत दर्शाया जा सकता है।

कृष्ण की ऐतिहासिकता

कृष्ण का प्राचीनतम उल्लेख **ऋग्वेद** में एक ऋषि के रूप में प्राप्त होता है। उसके बाद **छान्दोग्य उपनिषद** में कृष्ण को घोर आंगिरस ऋषि का शिष्य बताया गया है। तत्पश्चात कृष्ण **महाभारत, ब्रह्मवैवर्त** तथा **हरिवंश** आदि पुराणों में विष्णु के अवतार के रूप में प्राप्त होते हैं—

"यदाश्रौषं नरनारायणौ तौ, कृष्णार्जुनो वदतो नारदस्य।"

(महाभारत, १,१,१७४)

उसके साथ ही कृष्ण की भगवान वासुदेव के रूप में स्तुति की गयी है जिससे कृष्ण के वसुदेव-पुत्र होने का संकेत मिलता है—

"औउम् नमो वासुदेवाय।"

(महाभारत, १,१,२)

जैन साहित्य में कृष्ण की चर्चा बाइसवें तीर्थंकर नेमिनाथ के चचेरे भाई होने के कारण तथा नवम् नारायण होने के कारण विशेष रूप से हुई है। यहाँ प्राचीनतम रूप में कृष्ण का वर्णन **समवायांग सूत्र** तथा **ज्ञाताधर्म कथा** में प्राप्त होता है। इसके पश्चात यह संघदास गणि की **वसुदेव हिन्डी** में प्राप्त होता है। **त्रिषष्टिशलाका-पुरुषचरित** नामक कृति में २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण या वासुदेव, ९ प्रतिनारायण या प्रतिवासुदेव तथा ९ बलभद्रों का वर्णन किया गया है जिनमें कृष्ण नवम् नारायण या वासुदेव माने गये हैं।

जिनसेन कृष्ण को वासुदेव पुत्र होने तथा नवम् नारायण होने के कारण वासुदेव कहते हैं (नवमो वासुदेवोऽभूद्वसुदेवस्य

नन्दनः), और व्यास कृष्ण को वसुदेव पुत्र होने के कारण वासुदेव कहते हैं।

कृष्ण का वंश

व्यासीय **हरिवंश पुराण** के अनुसार कृष्ण यदु वंश के थे। यह वंश महाराज अत्रि से प्रारम्भ हुआ। अत्रिके पुत्र का नाम चन्द्र था जिससे यह वंश चन्द्र वंश भी कहलाया। अतः कृष्ण चन्द्र वंशी भी कहलाये।

जिनसेन कृत हरिवंश पुराण के अनुसार कृष्ण यदु वंश के थे। यदु वंश में अंधक वृष्णि राजा के दस पुत्र हुए जिनमें सबसे बड़े समुद्रविजय से नेमिनाथ तथा सबसे छोटे वसुदेव से कृष्ण हुए। अतः कृष्ण वृष्णि वंशी भी कहलाये। इस प्रकार कृष्ण और नेमिनाथ चचेरे भाई भी हुये।

इस प्रकार व्यास के अनुसार एवं जिनसेन के अनुसार कृष्ण यदु वंशी थे। परन्तु ब्राह्मणीय परम्परानुसार यदुवंश चन्द्रवंश कहलाया और जैन परम्परानुसार यदुवंश वृष्णिवंश भी कहलाया।

कृष्ण का जन्म

व्यासकृत हरिवंश पुराण, महाभारत का खिल या परिशिष्ट माना जाता है। यहाँ कृष्ण जन्म की कथा विष्णु अवतार के रूप में पृथ्वी की दुष्ट प्रवृत्तियों को नाश करने के लिए है।

वसुदेव महाराज उग्रसेन के मन्त्री थे। कंस उग्रसेन की ही बलवान सन्तान थे। वसुदेव से प्रसन्न होकर कंस ने अपनी चचेरी बहन देबकी का विवाह वसुदेव से कर दिया। जब कंस देवकी व वसुदेव को विदा कर रहे थे तो उसी समय आकाशवाणी हुई कि देवकी की आठवीं सन्तान कंस का वध करेगी। भयवश कंस ने देवकी और वसुदेव को कारागार में डाल दिया जहाँ उसने देवकी की छः सन्तानों को अत्यन्त निष्ठुरता से मार दिया।

सातवीं सन्तान को माया द्वारा वसुदेव की दूसरी पत्नी रोहिणी के गर्भ में प्रतिस्थापित कर दिया गया। इसके पश्चात् भाद्र पद कृष्ण अष्टमी की रात्रि को रोहिणी नक्षत्र में कृष्ण का जन्म हुआ

जिसे वसुदेव द्वारा यशोदा और नन्द गोष की सद्यःजात कन्या से परिवर्तित कर दिया गया। कृष्ण जन्म के विषय में **हरिवंश पुराण** (अध्याय १) में उल्लेख है कि—

अहं त्वमिजितोयोगे निशाया यौवने स्थिते
अर्द्धरात्रौ करिष्यामि गर्भ मोक्षं यथा सुखम्।
अष्टमस्य तु मासस्थ जातावावां ततः समम्,
प्राप्स्यावो गर्भ व्यव्यासं प्राप्ते कंसस्थ नाशने।।

अर्थात् कंस के नाश के लिए ही कृष्ण ने विष्णु के पूर्ण अवतार एवं देवकी की आठवीं सन्तान बनकर जन्म लिया।

जिनसेन कृत हरिवंश पुराण के अनुसार कृष्ण अवतारी न होकर स्वयं नारायण के रूप में जन्म लेते है—

अत्रान्तरे सुरैस्तुष्टैस्तस्मिन्नुद्घुष्टबम्मरे,
नवमों वासुदेवोऽभूदसुदेवस्य नन्दनः।। (५३/१७)

जैन मान्यता के अनुसार नारायण या वासुदेव प्रतिनारायण या प्रतिवासुदेव का वध करने के लिए जन्म लेता है। कृष्ण जन्म के विषय की गाथा जिनसेन द्वारा इस प्रकार दी गई है कि वसुदेव और देवकी के विवाह के बाद जब कंस को यह ज्ञात हुआ कि देवकी की सातवीं सन्तान उसका वध करेगी तो उसने देवकी तथा वसुदेव को कारागार में डाल दिया। क्रम पूर्वक देवकी की छः सन्तानों को मुनि द्वारा सुभद्रिलपुर के सेठ सुदृष्टि और अलका के मृतक पुत्रों से परिवर्तित कर दिया गया। उसके पश्चात् कृष्ण श्रवण नक्षत्र में भाद्रमास शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि को पवित्र करते हुए सातवें ही मास में कृष्ण का जन्म हुआ—

अथोदपादि श्रवणे तु पक्षे ह्यधोक्षजो भाद्रपदस्य शुक्ले।
पवित्रयन् द्वादशिकां तिथि तागलक्षितः सप्तग एव मासे।। (३५/१९)

अतः कृष्ण को वसुदेव द्वारा वृन्दावन के सुनन्द गोप तथा यशोदा की सद्यःजात पुत्री से परिवर्तित कर दिया गया।

इस प्रकार दोनों पुराणों में कृष्ण जन्म के विषय में न्यूनाधिक अन्तर होने पर भी समानता है। कृष्ण के माता-पिता व पालन-

पोषण करने वाले एक समान ही हैं। अन्तर यह है कि व्यासकृत पुराण के कृष्ण देवकी की आठवीं सन्तान हैं और विष्णु के अवतार हैं, तथा जिनसेन कृत पुराण में कृष्ण अवतार न होकर नारायण हैं और देवकी की सातवीं सन्तान के रूप में जन्म लेते हैं। कृष्ण के जन्म का कारण एक ही है, अर्थात्, पृथ्वी की दुष्ट प्रवृत्तियों का नाश करना।

कृष्ण का व्यक्तित्व

व्यास के अनुसार कृष्ण इन्द्र नीलमणि के समान श्याम वर्ण के थे। कमल के समान नेत्र थे। अत्यन्त सुडौल बाह्य छवि थी। वह अत्यन्त सौन्दर्य शाली थे। अपने अप्रतिम रूप के साथ ही अतुल बल सम्पन्न भी थे। इनके बलशाली होने का संकेत पूतना वध, शकट भंग, यमलार्जुन पतन, कालिया दमन तथा कंस एवं जरासन्ध का वध आदि देते हैं। इन सबके माध्यम से वह एक साहसिक एवं वीर पुरुष दिखाई देते हैं।

दूसरी ओर कृष्ण आध्यात्मिक जगत के भी सर्वोत्कृष्ट उपदेष्टा समझे गये और योगेश्वरों में इनकी परिगणना हुई। कृष्ण आज भी कोटि-कोटि जनों की प्रेरणा, श्रद्धा तथा निष्ठा के पात्र बने हुए हैं। कृष्ण राजनीतिज्ञ तथा धर्मोपदेशक भी थे। वे समाज संशोधक तथा नूतन क्रान्ति विधायक के साथ-साथ योगी तथा अध्यात्म साधना के पथिक थे। वह सोलह कलाओं से युक्त पूर्ण अवतारी थे।

जीवन की इन विविधतापूर्ण एवं सर्वांगीण प्रवृत्तियों का समन्वित अनुशीलन एवं परिष्कार ही कृष्ण चरित्र की विशेषता है। यही कारण है कि कृष्ण जैसा व्यक्ति इस देश में ही नहीं बल्कि संसार में अन्यत्र भी कदाचित् ही जन्मा हो। इसलिये कृष्ण चरित्र एवं व्यक्तित्व पर किसी भी दृष्टि से प्रकाश डाला जाए, वह अद्वितीय ही माना जायेगा।

जिनसेन द्वारा कृष्ण को एक मुख्य पात्र के रूप में चित्रित किया गया है क्योंकि जैन साहित्य में त्रेसठ शलाका पुरुषों का ही मुख्य रूप से वर्णन है जिनमें कृष्ण भी एक शलाका पुरुष (नवम्

नारायण) हैं। यहाँ भी कृष्ण पूर्ण सोलह कलाओं से युक्त हैं, और योगेश्वर, तत्त्वज्ञ एवं परम नीतिविद महापुरुष और योद्धा के रूप में वर्णित हैं। जिनसेन भी कृष्ण को आध्यात्मिक भावना से युक्त राजपुरुष मानते हैं। कृष्ण का धर्मसभाओं में उपस्थित होकर तीर्थंकर नेमिनाथ के साथ अपनी जिज्ञासा को शान्त करना उनकी आध्यात्मिक भावना को सूचित करता है। जिनसेन ने लिखा है—

वसुदेवो बलः कृष्णः सान्तपुरसुहृज्जनः
द्वारिका प्रजया युक्तः प्रद्युम्नादिसुतान्वितः ।।
विभूत्या परयागत्य शैवेयमभिवन्द्यते,
आसीनाः समवस्थाने धर्म शुश्रूषुरीश्वरात् ।। (६१/१५-१६)

अर्थात्, अन्तःपुर की रानियों, मित्रजन, द्वारिका की प्रजा तथा प्रद्युम्न आदि पुत्रों सहित बलदेव तथा कृष्ण बड़ी विभूति के साथ आये तथा वन्दना कर समवशरण में यथा स्थान बैठकर भगवान से धर्म श्रवण करने लगे।

जैन साहित्य के कृष्ण श्रेष्ठ रत्न हैं, वीर है, अर्द्ध चक्रवर्ती राजा हैं एवं कंस के हन्ता हैं। कृष्ण का अद्वितीय पराक्रम पूतना वध, शकट भंग, यमलार्जुन पतन, कंस वध आदि से स्पष्ट होता है। शलाका पुरुष वासुदेव कृष्ण की वीरता, तेजस्विता, अप्रतिम शक्ति सम्पन्नता आदि का वर्णन करते हुए जिनसेन ने लिखा है—

अभिषिक्तौ ततः सर्वैभूतेर्भूचरखेचरैः ।
भरतार्धविभुत्वे तौ प्रसिद्धौ राम केशवौ ।। (६१/११)

चाणूर और कंस वध का वर्णन करते हुए आचार्य ने कृष्ण की अद्वितीय वीरता एवं पराक्रम का वर्णन इस प्रकार किया है—

विहित परुष पादाकर्षणस्तं शिलायां
तदुचितभिति मत्वास्फाल्य हत्वा जहास ।। (६१/४)

इस प्रकार स्पष्ट है कि जिनसेन कृत **हरिवंश पुराण** में कृष्ण के चरित्र का वर्णन दो रूपों में प्राप्त होता है, एक तो महान वीर एवं शक्ति सम्पन्न वासुदेव अर्थात् शलाका पुरुष के रूप में और दूसरे आध्यात्मिक भावना से युक्त राजपुरुष के रूप में।

(शेष पृष्ठ २७८ पर)

शोध-प्रबन्ध सार

जीवन्धर चम्पू : एक समीक्षात्मक अध्ययन

—डा० (श्रीमती) राका जैन

(डा० रघुवीर शास्त्री के निर्देशन में प्रस्तुत, आगरा विश्व-विद्यालय से १९८५ में पी-एच० डी० के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध; अभी अप्रकाशित)

संस्कृत विश्व की प्राचीनतम भाषाओं में से एक है। अतः उसकी काव्य-सर्जनाएं अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। सामान्यतः संस्कृत काव्य दृश्य और श्रव्य के भेद से द्विधा विभक्त हैं। चम्पूकाव्य श्रव्य-काव्य की मिश्रशैली में अन्तर्भुक्त है, जो कि करम्भक, विरुदादि से सर्वथा भिन्न है। चम्पू शब्द की व्युत्पत्ति चुरादिगण के गत्यर्थक चपि धातु से हुई। श्री हरिदास भट्टाचार्य ने सहृदयों को चमत्कृत करके पवित्र करने वाले काव्य को चम्पू की संज्ञा दी है। चमत्कार से अभिप्राय है—उक्तिवक्रता एवं शाब्दिक काट-छांट। अतः चम्पू द्वारा शाब्दिक-चातुर्य के साथ-साथ चमत्कार प्रदर्शन भी होता है। गद्य-पद्य मिश्रित सालंकृत काव्य ही चम्पूकाव्य है। विविध चम्पू-कारों ने चम्पू-काव्य की महत्ता प्रतिपादित की है। स्वयं जीवन्धर चम्पू के लेखक महाकवि हरिश्चन्द्र ने चम्पूकाव्य के आनन्द को

(पृष्ठ २७७ का शेष)

यद्यपि दोनों ही पुराण कृष्ण को अत्यधिक पूज्यनीय, वीर एवं आध्यात्मिक मानते हैं, तथापि **जिनसेन कृत हरिवंश पुराण, व्यास कृत हरिवंश पुराण** से प्रभावित प्रतीत होता है। कृष्ण के जन्म के विषय में तो अन्तर प्राप्त होता है, परन्तु कृष्ण जन्म की परिस्थितियाँ, वसुदेव द्वारा यशोदा की सद्यःजात पुत्री से कृष्ण को परिवर्तित करना, नन्द एवं यशोदा द्वारा कृष्ण को पालना, पूतना वध, शकट भंग, यमलार्जुन पतन और कंस व जरासन्ध वध आदि घटनाएं तुलनात्मक दृष्टि से समान हैं, तथापि **जिनसेन कृत हरिवंश पुराण** में कृष्ण के गोपीप्रियरंजन रूप एवं राधा-प्रेम वर्णन का अभाव है।

बाल्यावस्था और किशोरावस्था के बीच विचरण करने वाली किशोरी कन्या के हर्षतुल्य बताया है। साहित्यकारों ने **चम्पू** शब्द का अर्थ ही 'सहृदयों को चमत्कृत करने वाला' कहा है।

यद्यपि चम्पू लेखन की परम्परा का अनुवर्तन प्रथम शती ईस्वी तक हो चुका था, ९वीं-१०वीं शती तक यह विधा द्रुतगति से चलती रही। दक्षिण भारत में चम्पूकाव्य का सृजन सर्वाधिक हुआ तथा मलयालम, कन्नड, तेलगू, तमिल, प्राकृत आदि अनेक भाषाओं में चम्पू के दर्शन होते हैं, किन्तु संस्कृत में चम्पूकाव्य का विधिवत् विकास दशवीं शती के पूर्वार्द्ध से हुआ। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के प्रतिपाद्य विषय **जीवन्धर चम्पू** से पूर्व दो चम्पूकाव्य रत्नों का प्रणयन हो चुका था। अब तक उपलब्ध चम्पुकाव्यों की संख्या लगभग २४५ है। आज भी कतिपय विद्वान अपनी लेखनी का लक्ष्य चम्पूकाव्य बना रहे हैं।

चम्पूकाव्यत्व की दृष्टि से **जीवनन्धर चम्पू** एक उत्कृष्ट काव्य-रत्न है। इसकी कथा दुखों को हरने वाली है—'जीवन्धरस्य चरितं दुरितस्य हन्तृ।' सकल चम्पूकाव्य तत्त्वों एवं धार्मिक सिद्धान्तों से समन्वित **जीवन्धर चम्पू** में कवि ने स्व-बुद्धि कौशल दर्शाकर चम्पू-काव्य श्रृंखला में एक अभिनव काव्य का प्रारूप प्रस्थित कर दिया है।

जीवन्धर चम्पू का जो संस्करण भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हुआ था उसमें संक्षिप्त भूमिका एवं अनुवाद के साथ पुस्तक का प्रामाणिक सम्पादन तो कर दिया गया है, किन्तु इस चम्पूकाव्य के साहित्यिक मूल्यांकन एवं समीक्षात्मक अध्ययन की आवश्यकता यथावत बनी रही, यही कारण है कि कालिदास, माघ, भारवि प्रभृति कविर्मनीषियों की कृतियों की भांति महाकवि हरिश्चन्द्र का **जीवन्धर चम्पू** प्रसिद्धि प्राप्त नहीं कर सका। हरिश्चन्द्र नाम के नौ विद्वानों का उल्लेख मिलता है जिनमें हमारा लक्ष्य **जीवन्धर चम्पू** एवं **धर्मशर्माभ्युदय** के प्रणेता महाकवि हरिश्चन्द्र की ओर है। हरिश्चन्द्र को ११वीं-१२वीं शती का माना गया है। उनके दोनों ही काव्य-रत्नों में काव्य-सौन्दर्य कूट-कूट कर भरा है।

जैन कथा ग्रन्थों की रचना का मूल आधार कर्म सिद्धान्त का विवेचन रहा है। जीवन्धर का समूचा चरित्र इसी का दिग्दर्शक है

जिसे कवि ने 'नियतिनियतरूपाप्राप्तिनां हि प्रवृत्तिः' कह कर अभिव्यक्त किया है। कथानक विस्तृत है तथापि महाकवि हरिश्चन्द्र ने उसे एकादश लम्भों में पूरा कर दिया है। यही कारण है कि कथानक के प्रवाह में विरसता नहीं आ सकी। कथा २३वें कामदेव जीवन्धर स्वामी के जीवन की प्रमुख घटनाओं पर आधृत है जो हमें बहुविध शिक्षा प्रदान करती है। जीवन्धर कथा में कथा-तत्त्वों का सम्यक् गठन हुआ है। इसका विवेचन शोध प्रबन्ध में यथास्थान किया गया है। संस्कृत ही नहीं, अन्य अनेक भाषाओं की सर्वविद रचनाओं में भी जीवन्धर-कथा को बड़ा महत्वपूर्ण स्थान मिला है। जीवन्धर-कथा से सम्बन्धित १८ ग्रन्थ हमारी दृष्टि में आए हैं। अनुश्रुति है कि भगवान महावीर के जीवन काल में राजा श्रेणिक ने सुधर्माचार्य से जीवन्धरकथा सुनी थी। जीवन्धर कथा विषयक सभी चरित-ग्रन्थ अपने में बेजोड़ हैं। कवि तिरुत्तक्कतेवर द्वारा तमिल भाषा में रचित **जीवकचिन्तामणि** तमिल प्रदेश में 'मणनुकू' अर्थात् 'शुभ विवाह ग्रंथ' के नाम से प्रसिद्ध है। तमिल प्रदेश में वैवाहिक कार्यक्रम में जीवन्धर कथा का अवश्य ही वाचन होता है।

नायक जीवन्धर का चरित्र उत्कृष्ट कोटि का है। काष्ठाङ्गार प्रतिनायक है जो कि सर्वदा जीवन्धर के अहित की कामना करता है। नृप सत्यन्धर जीवन्धर के पिता एवं राजपुरी के राजा थे। श्रेष्ठी गन्धोत्कट का चरित्र बुद्धि-चातुर्य का स्पष्ट उदाहरण है। यक्ष ने नायक के जीवन में पग-पग पर उपकार किया। राजा गोविन्दराज जीवन्धर को काष्ठांगार से राज्य सिंहासन दिलाने में पूर्ण सहायक हुए। राज्ञी विजया जीवन्धर की मां है। उसके जीवन में दुख-सुख का अद्भुत समन्वय हुआ है। गन्धर्वदत्ता जीवन्धर की पट्टरानी एवं काव्य की नायिका है। गुणमालादि आठ रानियों में सौहार्दता महनीय है। पात्रों की संख्या लगभग ८६ है जिनमें उच्च वर्गीय पात्र अधिक हैं।

एकादशलम्भीय **जीवन्धर चम्पू** में प्रयुक्त रसों में अंगीरस शान्त रस है, तथा शृंगार एवं वीर का भी बाहुल्य है तथापि अन्य

रसों का एकदम अभाव नहीं है। रस के उपादान विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारीभाव, का संगुम्फन भी प्रभावोत्पादक है।

भाषा भावों को वहन करती है, अतः इसके सम्यक् उपयोग के बिना भावाभिव्यंजना सम्भाव्य नहीं है। **जीवन्धर चम्पू** की भाषा भावानुकूल, अल्प समास संयुत मृदु, कहीं-कहीं क्लिष्ट समास बहुल, चमत्कारिक, वस्तुचित्रण के अनुरूप एवं प्रभावोत्पादिका है।

यद्यपि **जीवन्धर चम्पू** में अनेक अलंकारों का संयोजन हुआ है किन्तु महाकवि हरिश्चन्द्र को सर्वाधिक सफलता उत्प्रेक्षालंकार में मिली है। इसी कारण वे 'उत्प्रेक्षा-कवि' के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

इसके ७०५ श्लोकों में २४ छन्दों का प्रयोग हुआ है जिनमें 'अनुष्टुप' छन्द सर्वाधिक है। ग्रन्थ का प्रारम्भ स्रग्धरा छन्द में हुआ जो श्रीसमृद्धि प्रदायक माना गया है। शैली का उत्कर्षविधायक स्वरूप यहाँ अवलोकनीय है जो अत्युत्तम है।

जीवन्धर चम्पू में सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन का भी उत्कृष्ट रूप परिलक्षित होता है। हरिश्चन्द्रकालीन भारत में संयुक्त परिवार प्रणाली प्रचलित थी। अपनों से बड़ों के लिए आदर और छोटों के लिये प्यार इस प्रणाली का मुख्य लक्षण था। विवाह-व्यवस्था के सन्दर्भ में विवाह के बहुविध स्वरूप सामने आते हैं।

जीवन्धर चम्पू का धार्मिक विश्वास जैन है। यद्यपि जैनधर्म में ईश्वर सृष्टिकर्ता के रूप में मान्य नहीं है तथापि चतुर्विंशति तीर्थंकरों को आप्त पुरुष माना गया है। कर्मानुरूप शरीर-परिवर्तन ही पुनर्जन्म है। महाकवि हरिश्चन्द्र ने इसका वर्णन किया है। श्वान मर कर यक्ष हुआ जिसने कृतज्ञतावशात् जीवन्धर का जीवन पर्यन्त उपकार किया। जीवन्धर नायक के पूर्व जन्म का वर्णन हुआ है। तान्त्रिक विश्वास, रूढ़ि एवं अन्धविश्वास का भी यत्र-तत्र वर्णन मिलता है। मन्त्रों में नमस्कार मन्त्र की प्रभूत प्ररूपणा की गई है।

यद्यपि **जीवन्धर चम्पू** मूलतः जैन दर्शन का ग्रन्थ है तथापि वैदिक व पौराणिक मान्यताएं भी दृष्टव्य हैं जिसमें महाकवि हरि-

चन्द्र का पाण्डित्य परिलक्षित होता है। कवि ने गम्भीर, मार्मिक एवं मंजुल उक्तियों के द्वारा बहुमूल्य शिक्षा प्रदान की है। यहाँ हमें सूक्तियों के तीन रूप परिलक्षित हुए—नीतिपरक सूक्ति, सैद्धांतिक सूक्ति, और जीवन के अनुभव पर आश्रित दार्शनिक सूक्ति। सूक्तिपरक अनेक श्लोकों का भी बाहुल्य है। इस चम्पू के माध्यम से कवि का व्याकरण, ज्योतिष, कामशास्त्र, आयुर्वेद व संगीत सम्बन्धी ज्ञान भी दृष्टिगोचर होता है। नायक जीवन्धर ने देशाटन के प्रसंग में देश-देश, नगर-नगर का भ्रमण किया, अतः यहाँ जिन विविध जनपद, नगरी, पर्वत, अरण्य एवं नदी आदि का उल्लेख हुआ है वे भौगोलिक एवं राजनैतिक अवस्था के बोधक हैं।

यद्यपि पृथक्-पृथक रूप से जीवन्धर कथा से सम्बन्धित कई लेखादि सामने आए, परन्तु ऐसा कोई भी ग्रंथ अब तक हमारी दृष्टि में नहीं आया जिसने सम्पूर्ण **जीवन्धर चम्पू** ग्रन्थरत्न का बहु-विध अनुचिन्तन किया हो एवं उसकी महत्ता प्रतिपादित की हो। अतएव ऐसे आवश्यक उद्देश्य की पूर्ति के लिए, जिससे कि आज अलौकिक घटनाओं से आपूरित पुराणपुरुष क्षत्र-चूड़ामणि जीवन्धर स्वामी का चरित्र, जो कि गद्यपद्यात्मक संस्कृत भाषा में निबद्ध है, विविध दृष्टिकोणों के साथ पाठकों के सामने आ सके, प्रस्तुत अध्ययन एक प्रयास है।

——

शोध सार

प्राचीन मराठी जैन आख्यान-काव्य

–डॉ० (सौ०) हेमलता जोहरापुरकर

(डा० वि० बा० प्रभुदेसाई के निर्देशन में मराठी में लिखा गया शोध-प्रबन्ध जो नागपुर विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० के लिए स्वीकृत किया गया; अप्रकाशित।)

मराठी भाषा की उत्पत्ति के संकेत ईसा की आठवीं शती के आचार्य उद्योतनसूरी के **कुवलयमाला** ग्रन्थ में मिलते हैं। श्रवणबेलगोला के एक शिलालेख में–

'श्री चावुंडराये करवियले।
गंगराजे सुत्ताले करवियले॥'

मराठी में सबसे पहले लिखित वाक्य हैं। यह शिलालेख ईसा की दसवीं शती में लिखा गया था। मराठी भाषा का प्रयोग सबसे पहले जैन ग्रन्थों में ही हुआ है। ऐसा होते हुए भी ईसा की पन्द्रहवीं शती तक मराठी में जैन साहित्य निर्मिती के आसार नज़र नहीं आते। मगर पन्द्रहवीं शती के बाद साहित्य निर्मिती की परम्परा अक्षुण्ण रही। डॉ० सुभाषचन्द्र अक्कोले के **प्राचीन मराठी जैन साहित्य** के बाद मराठी साहित्य के इतिहासकारों का ध्यान जैन मराठी साहित्य की ओर गया और उन्होंने मराठी साहित्य के इतिहास में जैन ग्रन्थों का निर्देश किया।

जैनों के चार अनुयोगों में से प्रथमानुयोग में आख्यान और पुराणकाव्य आते हैं। चरित्र, पुराण और रास काव्यों का अंतर्भाव 'आख्यान-काव्य' की संकल्पना में किया गया है। कथानक में व्यक्ति-दर्शन, समाजदर्शन, शब्दचित्र, वर्णनशैली, रसवत्ता और अलंकार-योजना मराठी आख्यानकाव्य की विशेषताएं हैं और ये सब प्राचीन मराठी जैन आख्यानकाव्यों में पाई जाती हैं। धार्मिक पुराणों की हैसियत से इनका जैनियों में स्वाध्याय-पठन किया जाता है। मगर इन पुराणों में धार्मिक ज्ञान के अलावा उच्चकोटि के काव्यगुण और

नीतिमूल्य भी हैं, जिनका परिचय कराना मेरे प्रबन्ध का उद्देश्य है। उसके लिए १२ प्रकाशित पुराण काव्यों को आधार बनाया गया है।

प्राचीन मराठी जैन आख्यानकाव्य **रामायण** व **महाभारत** में चित्रित की गयी महापुरुषों की जीवनी, तथा त्रेसठ शलाका महापुरुषों का और अन्य कई गणमान्य महापुरुषों के चरित्र का बखान करते हैं। इन आख्यानकाव्यों का वर्गीकरण कालक्रमानुसार, चरित्र नायक के प्रकारानुसार, और एक ही चरित्र पर हुई एक से अधिक कवियों की रचनानुसार, किया जा सकता है। ईसा की १५वीं से १९वीं शती तक के आख्यानकाव्यों का कालक्रमानुसारी परिशीलन इस प्रबन्ध में प्रथमतः किया गया है।

जैन आख्यानकाव्यों की रचना का प्रारम्भ राजा श्रेणिक के काल से हुआ, ऐसा माना जाता है। राजा श्रेणिक भगवान महावीर के समवशरण में जाकर उनसे किसी महापुरुष के बारे में पृच्छा करके उसकी जीवनी सुनने की इच्छा प्रदर्शित करते हैं। भगवान महावीर द्वारा राजा श्रेणिक को बताई हुई कथा आख्यान-कवि अपने काव्य में अनुदित करते हैं। आख्यानकाव्य के प्रारम्भ में मंगलाचरण करके कथा के मूलाधार का कवि निर्देश करता है। मराठी में कथन करते हुए भी कवि मूल कथा का उल्लंघन नहीं करते।

प्रारम्भ की तरह प्राचीन मराठी जैन आख्यानकाव्यों का अन्त भी वैशिष्टयपूर्ण है। नायक का लौकिक लक्ष्य प्राप्त होने के बाद कथा सफल तथा समाप्त हुई, ऐसा जैन कवि नहीं मानते। लौकिक लक्ष्य प्राप्त हो या न हो, शाश्वत-चिरंतन सुख की प्राप्ति के लिए, आत्मज्ञान की चाह से संसार त्याग करके नायक आत्मोन्नति के पथ पर वैराग्य की ओर बढ़ते हैं, ऐसा वर्णन करने के बाद ही कवि अपने आख्यानकाव्य का समापन करते हैं। श्रोतागण को मराठी में कथा उपलब्ध हो सके और उनको पारलौकिक व लौकिक कल्याण की राह दिखाई दे, इसी उद्देश्य से आख्यानकाव्य की रचना की गई।

पद्मपुराण जैन रामायण है। जैन परम्परा में राम को 'पद्म' कहा गया है। यद्यपि **रामायण** और **पद्मपुराण** में पात्र और प्रसंग एक से हैं फिर भी इन दो ग्रथों में कथावस्तु और व्यक्ति-दर्शन में भिन्नता है। यथा—**पद्मपुराण** के अनुसार दशरथ राजा की तीन नहीं वरन् चार रानियाँ थीं। सीता राजा जनक के जुड़वा बच्चों में से एक थी। उसके जुड़वा भाई का नाम भामण्डल था। कैकेयी का नाम **पद्मपुराण** में केगामती है। केगामती ने दशरथ राजा से 'भरत को राजगद्दी मिले' ऐसा एक ही वर मांगा था। राम त्रेसठ शलाकापुरुषों में से आठवें बलभद्र, लक्ष्मण आठवें नारायण और रावण आठवें प्रतिनारायण तथा अर्धचक्रवर्ती थे। रावण दशमुखी नहीं था। रावण का वध राम ने नहीं बल्कि लक्ष्मण ने किया था। अग्नि-परीक्षा के बाद सीता ने भूमि प्रवेश नहीं किया, उसने आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर ली। राम के निधन की झूठी वार्ता सुनकर ही लक्ष्मण मे प्राण त्याग दिये। मगर लक्ष्मण की मृत्यु राम को सच नहीं लगती; लक्ष्मण निष्प्राण हो गया है, इस बात पर राम विश्वास नहीं कर सकते। बलभद्र राम अपने नारायण भाई लक्ष्मण से बहुत प्रेम करते थे। छह महीने तक राम अपने भाई लक्ष्मण का शव कन्धों पर लेके घूमते रहे। आखिर कृतांतवक्र देव के समझाने पर राम लक्ष्मण के शव का अग्नि संस्कार करते हैं।

जैन आख्यानकाव्य में हनुमान की कहानी भी रूढ़ परम्परा से अलग है। हनुमान पवनदेव यानि वायु के पुत्र नहीं थे वरन् वह पवनजय नामक राजा के पुत्र थे। वह वानर नहीं थे तथा ना ही उनकी पूंछ थी। वह ब्रह्मचारी भी नहीं थे। उनके कई विवाह हुए थे, ऐसा **हनुमानपुराण** में लिखा गया है।

कवि गिरीसुत ठकाप्पा ने **पांडवपुराण** में बाईस अध्यायों में पांडवों की जीवनी लिखी है। व्यासमुनि के **महाभारत** की अपेक्षा ठकाप्पा के **पांडवपुराण** में जो विविधताएं हैं वे इस प्रकार हैं: विचित्रवीर्य के धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर नाम के पुत्र अंबा, अंबिका और अंबालिका से हुए थे। कर्ण सूतपुत्र या सूर्यपूत्र नहीं था वरन्

सूर्यप्रभ राजा ने उसे पाला था इसलिए उसे सूर्यपुत्र कहते थे। द्रोपदी की शादी पांच पांडवों से नहीं, सिर्फ अर्जुन से हुई थी। द्रोपदी-वस्त्र-हरण की कथा का उल्लेख **पांडवपुराण** में नहीं है वरन् द्रोपदी हरण की नई कथा इसमें दिखाई देती है।

उपरोल्लिखित परिचित कथाओं के अलावा सामान्य लोगों के लिए अनभिज्ञ कहानियों का निर्माण भी जैन कवियों ने किया है। **श्रेणिक चरित्र** का नायक राजा श्रेणिक इतिहास में प्रसिद्ध राजा बिम्बिसार ही है। इतिहास कहता है कि राजा श्रेणिक जिनधर्मी था और भगवान महावीर का एकनिष्ठ अनुयायी था। **श्रेणिक चरित्र** में ऐसी कई घटनाएं हैं, जो इतिहास में कहीं नहीं लिखी गई।

आटे का मुर्गा बनाकर बलि देने से यशोधर की आत्मा को सात जनम तक कष्ट सहना पड़ा। यशोधर की आत्मा की सात जनम की कहानी यशोधर के सातवें भव का जीव अभयरुचि खुद बताता है। इस तरह एक आत्मा द्वारा कहा गया **यशोधर चरित्र** एक आत्मचरित्र ही है।

सुदर्शन-चरित्र और **जम्बुस्वामी पुराण** में सुदर्शन और जम्बु-स्वामी के अटल वैराग्य का दर्शन होता है।

शीलतरंगिणी पुराण की अद्‌भुत कहानी में सदाचार व सच्चारित्र का संदेश कवि ने दिया है।

कथावस्तु की तरह प्राचीन मराठी जैन आख्यानकाव्यों में परिचित और अनभिज्ञ पात्रों के जो दर्शन होते हैं उसमें पूर्वार्ध के भोगी, रागद्वेष युक्त पात्र कहानी के उत्तरार्ध में संयम धारण करके आधी से समाधि की ओर जाते हुए दिखते हैं।

कोई व्यक्ति संपूर्णतया दुष्ट नहीं होता। दुष्ट, दुर्जन व्यक्ति भी पूर्ण रूप से दुर्जन नहीं होते। दुर्जनों में भी कुछ अच्छाइयाँ होती हैं, ऐसा जैन कवियों का विश्वास था। सीताहरण करने वाला राक्षस भी व्रतनिष्ठ था। उसके अहंकार से उसका पतन हुआ, ऐसा **पद्म पुराण** से मालूम होता है। **पांडव पुराण** का दुर्योधन दुराग्रही तथा असहिष्णु था, किन्तु वह **महाभारत** के दुर्योधन की तरह दुष्ट नहीं था। कर्ण से उसकी दोस्ती, दोस्ती की एक मिसाल थी।

तत्त्वज्ञान और धर्म प्रसार के हेतु लिखे गये मराठी जैन आख्यानकाव्यों में व्यक्ति दर्शन की तरफ कवि ज्यादा ध्यान नहीं दे सके। फिर भी अपने काव्य में व्यक्तित्व की रेखाओं का यथावत् दर्शन कराने में वे सफल हुए, ऐसा कहा जा सकता है। इन काव्यों में सामाजिक, राजकीय व आर्थिक स्थिति का भी दर्शन होता है। गुणकीर्ति और पंडित मेघराज को छोड़कर बाकी सभी कवि अपने काल की घटनाओं से प्रभावित थे।

तत्त्वज्ञान तथा धर्म प्रसार के उद्देश्य से लिखे गये जैन आख्यान काव्यों में जैन तत्त्वज्ञान और आचार धर्म की विस्तार से जानकारी दी गयी है तदपि इससे कहानी का प्रवाह बाधित नहीं होता है। जैन धर्म में जगन्नियंता सर्वशक्तिमान परमेश्वर को मान्यता नहीं है, वरन् आत्मा का निर्मल, शुद्ध स्वरूप ही परमेश्वर है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूपी रत्नत्रय द्वारा आठ कर्मों को नष्ट करके कर्मबन्धन से मुक्त होने वाला आत्मा याने जीव सिद्ध होता है। वही ईश्वर अथवा परमात्मा है। जैनधर्म जगच्चालक ईश्वर को न मानते हुए भी पाप-पुण्य, परलोक, पुनर्जन्म व कर्मसिद्धान्त में विश्वास रखता है। इसीलिए वह 'आस्तिक' है।

जैन आख्यानकाव्य में नगर, प्रासाद, विवाह समारोह, युद्ध, निसर्ग और स्वर्गसुख का चित्रमय शैली में वर्णन किया गया है। जैन कवियों ने अपने काव्य को रसभरित और गुणों से परिपूर्ण करने के लिए उन्हें नाट्यमय प्रसंगों से सजाया है।

आख्यान काव्यों में नव रसों की प्रस्तुति आती है। लेकिन अन्त में सभी रस शांत रस में विलीन हो जाते हैं। नव रसों के प्रयोग में इन कवियों की सुसंस्कृतता और कलात्मकता दिखाई देती है।

अलंकारों का यथासम्भव प्रयोग किया गया है। शब्दालंकारों में अन्त्य यमक सभी जगह है। अनुप्रास अलंकार के भी कई उदाहरण हैं, यथा पद्मपुराण का निम्नलिखित उद्धरण—

हाकीत टाकीत पाचारीत । मारीत वारीत सारीत ।
छेदीत भेदीत विचारीत । परस्परांते ।। ६.१८ ।।

यहां कीत, रीत, दीत शब्दों का पुनरुक्ति से अनुप्रास हुआ है ।

उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, दृष्टांत, स्वभावोक्ति, व्यतिरेक, विरोधाभास, अतिशयोक्ति आदि अर्थालंकार इन काव्यों में आये हैं। राम के साथ जाने वाली सीता का वर्णन उत्प्रेक्षा अलंकार में कवि गुणकीर्ति निम्नवत करते हैं—

की ही सरस्वती रामासवे । की ही कीर्ती निघाली भावे ।
की ही करुणारूपी नावे । निघाली पै ।। २१. ११२ ।।

अन्धकवृष्णी राजा ने अपनी कन्या कुन्ती का विवाह पांडु राजा से करने के लिये साफ इन्कार कर दिया । तब जल बिना मीन जैसे तड़पती है वैसा पांडु राजा कुन्ती के विरह में तड़प रहा था, ऐसा दृष्टांत कवि ठकाप्पा देता है ।

व्याजस्तुति, सार, इत्यादि अलंकार भी इन काव्यों में दिखाई देते हैं । कवियों ने संसार और निसर्ग से कई उपमान लिये हैं । कई जगह कवि द्वारा संकेतों का भी प्रयोग किया गया है ।

जैन कवियों की भाषा सीधी-साधी, प्रासादिक और सुबोध है उचित शब्द प्रयोग, रसानुकूल भाषा-रचना, भाव वहन करने वाले अलंकार, मुहाबरे और लोकोक्तियों से उनके काव्य सम्पन्न हुए हैं। उनके सुभाषितों में मनुष्य स्वभाव के आचार-विचारों और अनुभवों के दर्शन होते है ।

जैन धर्मीय परम्परा की रूढ़ कल्पनाबन्धों से ये काव्य जैनेतरों को थोड़ा सा कठिन लग सकते हैं, परन्तु इन कल्पनाबन्धों के अर्थ समझने पर यह कठिनाई नहीं रहती ।

——

'हिमवन्त-थेरावली' की वास्तविकता

—डा० शशि कान्त

१९२९-३० ई० में मुनि कल्याण विजय और मुनि पुण्य विजय द्वारा खारवेल के हाथीगुम्फा शिलालेख के विषय में कुछ लेख प्रकाशित किये गये थे जिनमें **हिमवन्त-थेरावली** को आधार बनाया गया था। इस महत्त्वपूर्ण शिलालेख पर शोधकर्ता विद्वानों को उक्त ग्रन्थ के सम्बन्ध में स्वाभाविक रूप से जिज्ञासा हुई। मुनि जिन विजय जो स्वयं श्वेताम्बर साधु थे परन्तु साथ ही एक निष्पक्ष विद्वान और पुरातत्त्वविद भी थे, ने इसकी जांच की और यह पाया कि **वह सारा ही ग्रन्थ बनावटी है**। इस विषय पर मुनि जिन विजय जी का पत्र दिनांक १२-४-१९३० **अनेकान्त**, वर्ष १, किरण ६-७ (वैशाख ज्येष्ठ, वीर नि०सं० २४५६ = मई-जून, १९३० ई०) के पृ० ३५१-५२ पर प्रकाशित है। इस पत्र का सारभूत अंश नीचे उद्धृत है—

"यह थेरावली अहमदाबाद में पण्डित-प्रवर श्री सुखलाल जी के प्रबन्ध से हमारे पास आ गई थी और उसका हमने खूब सूक्ष्मता के साथ वाचन किया। पढ़ने के साथ ही **हमें सारा ही ग्रन्थ बनावटी मालूम हो गया** और किसने और कब यह गढ़ डाला उसका भी कुछ हाल मालूम हो गया। इन बातों के विशेष उल्लेख की मैं अभी आवश्यकता नहीं समझता। सिर्फ इतना ही कह देना उचित होगा कि **हिमवन्त-थेरावली** के कल्पक ने, खारवेल के लेखवाली जो किताब हमारी (**प्राचीन जैन लेख संग्रह**, प्रथम भाग) छपाई हुई है, और जिसमें पं० भगवानलाल इन्द्र जी के पढ़े हुए लेख का पाठ और विवरण दिया गया है उसी किताब को पढ़ कर, उस पर से यह थेरावली का वर्णन बना लिया है। उस कल्पक को श्री जायसवाल जी के पाठ की कोई कल्पना नहीं हुई थी इसलिये उस कल्पक की थेरावली अप-टु-डेट नहीं बन सकी। खैर। **ऐसी रीति हमारे यहाँ बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है इससे इसमें हमें कोई आश्चर्य पाने की बात नहीं।**"

मुनि जिन विजय जी द्वारा जो स्वयं भी डा० काशी प्रसाद जायसवाल के साथ हाथीगुम्फा शिलालेख पर शोधरत थे, **हिमवन्त-थेरावली** की विश्वसनीयता को अमान्य कर दिये जाने के बाद डा० जायसवाल, डा० राखाल दास बनर्जी, डा० बेनी माधव बरुआ और डा० दिनेश चन्द्र सरकार ने, जिनका इस शिलालेख के शोधपूर्ण अध्ययन पर विशिष्ट अवदान है, इस **थेरावली** को विचार के योग्य नहीं समझा। प्राचीन उड़ीसा के इतिहास पर शोधरत अन्य विद्वानों (यथा—डा० ए० सी० मित्तल, डा० एन० के० साहू, डा० एल० एन० साहू) ने भी इसे ऐतिहासिक स्रोत के रूप में स्वीकार नहीं किया। मैंने अपनी पुस्तक The Hathigumpha Inscription of Kharavela and the Bhabru Edict of Asoka—A Critical Study (प्रकाशित १९७१) में मुनि जिन विजय जी के **अनेकान्त** में प्रकाशित उक्त पत्र को पृ० ५ की पाद-टिप्पणी ५ में निर्दिष्ट किया है। चूंकि विद्वद्समुदाय द्वारा यह सामान्य रूप से मान लिया गया था कि **हिमवन्त-थेरावली** प्रामाणिक नहीं हैं वरन् यह एक प्रक्षिप्त, आधुनिक और कल्पित पुस्तक है, मुनि जी के उक्त पत्र को उद्धृत करना मैंने आवश्यक नहीं समझा था।

इधर कुछ विस्मयकारी बातें प्रकाश में आई हैं। कुछ श्वेताम्बर विद्वानों द्वारा **हिमवन्त-थेरावली** को महिमा मण्डित किये जाने का सुनियोजित प्रयास किया गया जिससे विद्वानों में विभ्रम की स्थिति उत्पन्न हो गई और कुछ विद्वान इस कपोल-कल्पित ग्रन्थ को एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज और इतिहास का विचारणीय स्रोत-साधन समझने लगे। इसका विशद उपयोग आचार्यश्री हस्तीमल जी महाराज ने अपने **जैनधर्म का मौलिक इतिहास,** द्वितीय भाग (पृ० ४७४-९३) (प्रकाशित १९७४), में किया है। उल्लेखनीय है कि आचार्य श्री ने हस्तलिखित प्रति का ही उपयोग किया है और सम्भवत: यह अभी भी अप्रकाशित है।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक और स्थानकवासी दोनों ही परम्पराओं के कतिपय साधु-विद्वान आम्नाय पक्ष में इस प्रकार का साहित्य-

प्रदूषण करने में संकोच नहीं करते, इसका संकेत मुनि जिन विजय जी ने अपने उक्त पत्र में भी किया है। सम्मेद शिखर जी के सम्बन्ध में बादशाह अकबर का फ़रमान श्वेताम्बर समुदाय ने अपने पक्ष साधन हेतु प्रस्तुत किया था परन्तु उसे न्यायालय द्वारा जाली पाया गया। श्रवणबेलगोला की गोम्मटेश्वर बाहुबलि की मूर्ति को मूल रूप में श्वेताम्बर प्रतिमा सिद्ध करने के लिए एक श्वेताम्बर मूर्ति पूजक आचार्य सूरि-शिशु श्री नरेन्द्र सागर सूरि ने **दिगम्बर आगेवान चामुण्डराय मंत्रीनु भयंकर कावतरु याने गोम्मटेश्वरनी मूर्ति नो करेल काया-पलट** (अर्थात्, दिगम्बर सरदार चामुण्डराय मंत्री का भयंकर कपट : गोमटेश्वर प्रतिमा का रूपान्तरण) पुस्तक लिख डाली। (देखें, **शोधादर्श**-२८, पृ० ११०–१४)। श्री महावीरजी अतिशय क्षेत्र के सम्बन्ध में भी १९१८ ई० से कुछ शरारती तत्त्व इसे श्वेताम्बर सम्प्रदाय द्वारा अधिगृहीत किये जाने के उद्देश्य से विभिन्न न्यायालयों में वाद दायर करते रहे हैं। (देखें, **शोधादर्श**-३५, पृ० १७८-८०)।

तथापि दिगम्बर आम्नाय के पक्षधर मुनि आचार्य और विद्वान भी कल्पित धारणाओं और मिथकों के प्रचार से सर्वथा विरत नहीं हैं। **अनेकान्त** (वर्ष ५१, किरण २-३, अप्रेल-सितम्बर १९९८) में पं० पद्म चन्द्र शास्त्री ने अपने सम्पादकीय 'ये सब कुछ बदलेंगे' और प्रो० उदय चन्द्र जैन ने अपने लेख 'धर्मकीर्ति और जैन दर्शन' में इस प्रवृत्ति को इंगित किया है। जून १९९५ में शौर सैनी प्राकृत को ही मूल प्राकृत सिद्ध करने की हठधर्मिता ने श्वेताम्बर आम्नाय के साधु और विद्वानों को अर्धमागधी (जिसमें श्वेताम्बर आगम निबद्ध हैं) को प्राचीनतर और महावीर की मूल प्राकृत सिद्ध करने के लिए लामबन्द कर दिया, और इस विवाद में वयोवृद्ध विद्वान डा० नथमल टॉटिया की स्थिति भी असमंजसपूर्ण हो गई है।

——

(पृष्ठ २६४ का शेष)

(७) **टेलीफोन**—जहाँ कहीं क्षेत्र तक टेलीफोन लाइन आई हो वहां यात्रियों के लिये टेलीफोन की सुविधा उपलब्ध किया जाना अत्यावश्यक है।

(८) **साधु-सन्तों को सुविधा**—यदि किसी क्षेत्र पर तीर्थ यात्री को किसी साधु-सन्त का सानिध्य भी प्राप्त हो जाए तो वह सोने में सुहागा हो जाता है। साधु समागम से धर्माचरण एवं संयम की प्रवृत्ति बढ़ती है, उनके प्रवचन का लाभ मिलता है तथा आहार दान एवं वैयावृत्य करने का सुयोग प्राप्त होता है। उनकी प्रेरणा से क्षेत्र पर एकाधिक पूजा विधान भी होते रहते हैं जिनसे क्षेत्र के धार्मिक वातावरण में अभिवृद्धि होती है तथा यात्रियों की आवा-जाही में भी उल्लेखनीय वृद्धि हो जाती है। अतः क्षेत्र के प्रबन्धकों का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि साधु-सन्तों को क्षेत्र पर रुकने के लिए यथा सम्भव किसी प्रकार की असुविधा न हो। आचार्य श्री दयासागर जी ने अपने परिपत्र में क्षोभ प्रकट करते हुए लिखा है कि "असंयमियों ने क्षेत्रों पर असंयम का इतना विस्तार कर रखा है कि संयमी को वहां भी आत्म साधना करना मुश्किल हो गया है।..... क्षेत्रों पर साधुओं के ठहरने का कोई उचित स्थान नहीं..... यदि किसी साधु ने क्षेत्र पर रहना चाहा तो उसे उसके कटु अनुभव झेलने पड़े।" यद्यपि हम यह समझने में असमर्थ हैं कि सर्व सांसारिक सुख सुविधाओं को स्वेच्छा से त्याग कर जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण करने वाले महाव्रती मुनिराज को किसी भी क्षेत्र पर अपने अस्थाई प्रवास के दौरान क्या कोई कटु अनुभव भी झेलने पड़ सकते हैं तथापि यदि कहीं ऐसा हुआ है तो वह उस क्षेत्र के प्रबन्धकों के लिये लज्जा की बात है।

(९) **तीर्थ-क्षेत्र धर्म-क्षेत्र**—तीर्थ क्षेत्रों को धर्म-क्षेत्र बना रहने दें, **उन्हें कर्म-क्षेत्र या पर्यटन केन्द्र न बनाएं**। तीर्थ-क्षेत्र तीर्थंकरों एवं अन्य महामुनियों की साधना स्थली रहे हैं। उन पुण्य भूमियों के दर्शन से हम संयम और त्याग की प्रेरणा प्राप्त करते हैं तथा उनके

धर्ममय शान्त वातावरण में निराकुल आनन्द एवं सुख की प्राप्ति हेतु हम उनके दर्शनों के लिये जाते हैं। **विकास के नाम पर तीर्थ क्षेत्रों को मौज मस्ती के स्थल पिकनिक स्पाट, Holiday Resorts में न परिवर्तित करें।** आचार्य श्री दयासागर जी का कहना है कि अब तो लोग तीर्थ क्षेत्रों पर हनीमून तक मनाने लगे हैं। विवाहों के आयोजन भी होने लगे हैं—अतिथियों को विवाह समारोह में सम्मिलित होने के साथ-साथ तीर्थ यात्रा का पुण्य लाभ भी अर्जित कराने की दृष्टि से। क्षेत्र के प्रबन्धकों को संसार बढ़ाने वाली ऐसी सब प्रवृत्तियों का दृढ़ता पूर्वक निषेध करना चाहिए। अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी की यात्रा से हाल ही में लौटे एक तीर्थ यात्री की शिकायत थी कि क्षेत्र मन्दिर के बाहर के कटरा बाजार में ग्राहकों को आकर्षित करने तथा उनके मनोरंजन के लिए शृंगारिक गीतों के कैसेट हर समय जोर-जोर से बजते रहते हैं जिससे क्षेत्र का धार्मिक वातावरण प्रदूषित होता है। क्षेत्र कमेटी को इस ओर ध्यान देना चाहिए।

(१०) **प्रबन्ध व्यवस्था**—हमारे तीर्थ क्षेत्रों के सम्बन्ध में यह एक आम शिकायत देखने सुनने में आती है कि मैनेजर जैसे महत्वपूर्ण पदधारी व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों के निष्पादन में पर्याप्त सक्षम नहीं होते। हमारी समझ में इसके मुख्य कारण मैनेजर के पद पर **अपात्रों की नियुक्ति एवं अपर्याप्त वेतन** दिया जाना, हैं। क्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष/मन्त्री क्षेत्र के मैनेजर सहित सभी कर्मचारियों की नियुक्ति प्रायः अपनी निजी पसन्द से ही करते हैं। कर्मचारी का नौकरी में चलता रहना भी पूर्णतः उनकी मर्जी पर ही निर्भर करता है। फलतः पात्रता की अपेक्षा चाटुकारिता व जी-हजूरी को ही अधिक प्रश्रय मिलता है। वैसे भी अधिकांश क्षेत्रों पर मैनेजर को जो वेतन दिया जाता है वह किसी अनुभवी सुपात्र को आकर्षित करने के लिये पर्याप्त नहीं होता। पद की जिम्मेदारियों, अधिकारों व गरिमा के अनुरूप तो बिल्कुल नहीं। परिणामस्वरूप क्षेत्र के अभिलेखों के ठीक प्रकार से न रखे जाने, कुव्यवस्था, आय

में हेरा-फेरी तथा भ्रष्टाचार की शिकायतें आए दिन उजागर होती रहती हैं। इधर कुछ वर्षों में कुछ तीर्थ क्षेत्रों पर कतिपय मुनिराजों/आर्यिकाओं की प्रेरणा एवं मार्गदर्शन में विपुल द्रव्य की लागत से नवीन धर्मायतनों एवं सुविधायुक्त अतिथिगृहों के निर्माण के रूप में काफी विकास कार्य हुआ है पर यह देख कर विस्मय होता है कि किसी की दृष्टि प्रबन्ध व्यवस्था को सुधारने की मूलभूत आवश्यकता की तरफ नहीं गई। हां, तीर्थ क्षेत्र पर येन-केन प्रकार वर्चस्व बनाये रखने या प्राप्त करने का संघर्ष अवश्य चलता रहता है। क्षेत्रों की प्रबन्ध व्यवस्था सुधारने के लिये हमारे निम्नलिखित सुझाव हैं—

(i) **तीर्थ क्षेत्रों का सम्बद्धीकरण** (Affiliation)—भा० तीर्थ क्षेत्र कमेटी को तीर्थ क्षेत्रों को अपने से सम्बद्ध करने की एक योजना बनाना चाहिए तथा अधिकाधिक क्षेत्रों को उस योजना के अन्तर्गत लाने का प्रयास करना चाहिए ताकि सम्बद्ध क्षेत्रों की प्रबन्ध व्यवस्था में अधिकतम एकरूपता लाई जा सके। [हमने उत्तरांचल दि० जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी के गठन पर उ० प्र० के तीर्थ क्षेत्रों को उससे सम्बद्ध करने की एक योजना बनाई थी जो काफी लाभप्रद सिद्ध हुई थी।] सम्बद्ध क्षेत्र भारतीवर्षीय कमेटी की इकाई के रूप में कार्य करे तथा ऐसी इकाइयों के प्रतिनिधियों के लिए भारतवर्षीय कमेटी की कार्यकारिणी समिति में कुछ स्थान आरक्षित रहें। सम्बद्ध क्षेत्र भारतवर्षीय कमेटी की सामान्य देख-रेख के अधीन कार्य करे तथा क्षेत्र कमेटी की कार्यकारिणी में भारतवर्षीय कमेटी का भी एक नामांकित सदस्य रहे। भारतवर्षीय कमेटी अपने सभी प्रकार के अनुदान-सहायता सामान्यतया केवल सम्बद्ध तीर्थ क्षेत्रों को ही दे तथा यह सुनिश्चित करे कि—

(क) क्षेत्र कमेटी सोसायटीज रजिस्ट्रेशन ऐक्ट के अन्तर्गत अपना रजिस्ट्रीकरण कराये तथा निर्धारित अवधि के भीतर नवीकरण कराती रहे।

(ख) क्षेत्र कमेटी क्षेत्र के सभी अभिलेख—रिकार्ड, आय-व्यय के लेखे आदि भारतवर्षीय कमेटी के दिशा निर्देशों (Guidelines) के अनुसार सुव्यवस्थित रूप में रखे।

(ग) क्षेत्र कमेटी की कार्यकारिणी के चुनाव उसके संविधान के अनुसार नियत अवधि पर पूर्ण सत्यनिष्ठा के साथ सम्पन्न हों। निर्वाचन बैठक में भारतवर्षीय कमेटी को एक पर्यवेक्षक (Observer) भेजने का अधिकार हो तथा यदि आवश्यक हो तो निर्वाचन उक्त पर्यवेक्षक की अध्यक्षता में ही सम्पन्न कराए जाएं।

(घ) प्रत्येक सम्बद्ध क्षेत्र की प्रबन्ध कमेटी वर्ष की समाप्ति के भीतर अपनी वार्षिक रिपोर्ट (आय-व्यय के विवरण सहित) तैयार करके भा० दि० जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी को भेजे जो उसका सार संक्षेप 'तीर्थ वन्दना' पत्रिका में प्रकाशित करायें।

(ii) **क्षेत्र-मैनेजर सेवा**—भा० दि० जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी को सभी सम्बद्ध क्षेत्रों के मैनेजरों के पद के लिए एक केन्द्रीयकृत सेवा (Centralised Service) प्रारम्भ करनी चाहिए तथा जिस किसी भी क्षेत्र पर भविष्य में पद रिक्त हो उस पर इस सेवा के लिए चयनित अभ्यर्थी को क्षेत्र कमेटी की सहमति से तैनात करना चाहिए। भा० कमेटी द्वारा इस पद के लिए न्यूनतम अर्हताएं (Qualifications, experience etc.) तथा पद की जिम्मेदारियों व अधिकारों की गरिमा के अनुरूप वेतनमान तथा सेवा सम्बन्धी अन्य शर्तें निर्धारित करके उनकी सेवा नियमावली तैयार करनी चाहिए। मैनेजर पद के दो वेतन ग्रेड बनाये जा सकते हैं—एक पांच लाख रु० तक की वार्षिक आय वाले क्षेत्रों के लिए तथा दूसरा उससे अधिक आय वाले क्षेत्रों के लिये। **भा० कमेटी द्वारा तैनात मैनेजरों का वेतन उक्त कमेटी द्वारा ही वहन किया** जाना चाहिए। क्षेत्र कमेटी केवल आवास-बिजली-पानी आदि की निःशुल्क सुविधा उपलब्ध कराने के लिये तथा यात्रा व्यय, स्थानीय भत्तों आदि के लिए ही जिम्मेदार होगी।

(iii) **चयन बोर्ड**—मैनेजरों की केन्द्रीयकृत सेवा में नियुक्ति के लिये उपयुक्त अभ्यर्थियों का चयन करने के लिए भा० दि० जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी को एक चयन बोर्ड का गठन करना चाहिए जिसका चेयरमैन या कम से कम एक सदस्य परिपक्व प्रशासकीय अनुभव रखने वाला हो।

(iv) **प्रशिक्षण शिविर**—भारतवर्षीय कमेटी को सभी तीर्थ क्षेत्रों के मैनेजरों व वरिष्ठ कर्मचारियों के लिये हर पांच वर्ष में कम से कम एक बार किसी केन्द्रीय तीर्थ क्षेत्र पर एक प्रशिक्षण शिविर का आयोजन करना चाहिए जिसमें विशेषज्ञ वक्ताओं द्वारा पुरातत्त्व विभाग के नियम-अधिनियमों एवं अपेक्षाओं, क्षेत्र के आय-व्यय के लेखों तथा अन्य अभिलेखों के रख-रखाव, चोरी-गबन आदि के मामलों में कानूनी कार्यवाही आदि के सम्बन्ध में तथा अन्य आवश्यक विषयों में प्रशिक्षुओं को विस्तार से सम्यक् जानकारी दी जाय।

(v) **निष्पक्ष आडिट की व्यवस्था**—अनेक क्षेत्रों के सम्बन्ध में यह आम शिकायत है कि उनके आय-व्यय के लेखे सही तरीके से तथा पूरी इमानदारी के साथ नहीं रखे जाते, अनाप-शनाप खर्च किये जाते हैं, गबन भी होते रहते हैं और लीपा-पोती कर दी जाती है। आचार्य श्री दयासागर जी ने तो अपने परिपत्र में खुला आरोप लगाया है कि "क्षेत्र के रक्षक क्षेत्र के भक्षक बन गये हैं तथा क्षेत्र की सम्पत्ति व आय को हड़प रहे हैं, उसका दुरुपयोग कर रहे हैं।" एक क्षेत्र पर कार्यकारिणी समिति के एक नवनिर्वाचित खुरपेंची सदस्य को मन्त्री जी द्वारा किये गये (या हिसाब में दिखाये गये) किसी अनाप-शनाप खर्चे पर आपत्ति उठाने पर मन्त्री जी ने यह कह कर चुप कर दिया कि क्षेत्र के लिये काफी रुपया तो वे ही अपने प्रभाव से इकट्ठा करके लाते हैं। क्षेत्र पर आयोजित पंच-कल्याणक महोत्सव, महामस्ताभिषेक आदि के महायोजनों में विभिन्न प्रकार से इकट्ठा की गई लाखों की दान राशि को मनमाने ढंग से खर्च करने का अधिकार तो आयोजकों को मानो स्वतः ही प्राप्त हो जाता है जिसके लिये उन्हें किसी के प्रति जवाबदेही होने की जरूरत नहीं महसूस होती। अभी कुछ वर्ष पहलें एक सुप्रसिद्ध क्षेत्र पर हुए पंच-कल्याणक महोत्सव में नवीन पदाधिकारियों द्वारा किये गये लाखों के अनाप-शनाप व्यय का विस्तार से ब्योरा उजागर करते हुए क्षेत्र के निवर्तमान मन्त्री जी ने पूरे हिसाब के निष्पक्ष आडिट कराये जाने की मांग एक मुद्रित परिपत्र के द्वारा की थी जिसे स्वीकार

नहीं किया गया। पदाधिकारियों के इस प्रकार के अनुत्तरदायी आचरण से उनकी सत्यनिष्ठा एवं इमानदारी पर ही प्रश्न चिन्ह लग जाता है।

हमारा सुझाव है कि भा० दि० जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी को अपने से सम्बद्ध (Affiliated) सभी तीर्थ क्षेत्रों के आय-व्यय के लेखों (क्षेत्र पर सम्पन्न सभी महोत्सवों के लेखों सहित) के निष्पक्ष आडिट की व्यवस्था स्वयं करनी चाहिए तथा आडिट फीस आदि का व्यय भी स्वयं ही वहन करना चाहिए।

हमारी समझ में भारतवर्षीय दि० जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी द्वारा तीर्थ क्षेत्रों को प्रत्यक्ष अनुदान दिये जाने के बजाय उपर्युल्लिखित सुविधाओं एवं सेवाओं पर व्यय करना हमारे तीर्थ क्षेत्रों के विकास में कहीं अधिक सहायक सिद्ध होगा। उपरोक्त सेवाओं पर होने वाले व्यय की आंशिक पूर्ति के लिये भा० कमेटी लाभान्वित होने वाले तीर्थ क्षेत्रों से यदि उनकी आय का १० से २५% तक प्राप्त करने की शर्त भी लगा दे तो हमारी समझ में अनुचित नहीं होगा।

तीर्थ संरक्षिणी महासभा को अपने नाम के अनुरूप तीर्थक्षेत्रों एवं पुरातत्त्व के महत्व के प्राचीन मन्दिरों के जीर्णोद्धार एवं संरक्षण पर अपना ध्यान केन्द्रित रखना चाहिए। आज गिरनार जैसे प्रमुख सिद्ध क्षेत्र पर जैनों को वैष्णव साधुओं की जोर जबर्दस्ती के कारण भगवान नेमिनाथ के टोंक मन्दिर (निर्वाण स्थल) पर विधिवत् पूजा-अर्चना करना भी सम्भव नहीं रह गया है। खण्डगिरि, उदय-गिरि, मंदारगिरि पर भी स्थिति सन्तोषजनक नहीं बताई जाती। यदि तीर्थ संरक्षिणी महासभा जैन धर्म के इन प्राचीन केन्द्रों एवं तीर्थ स्थलों को पूजा-अर्चना के लिए निरापद करने में अपनी प्रमुख भूमिका निभाये तो अपने गठन को सार्थक करेगी।

विगत कुछ वर्षों में साहु जैन ट्रस्ट ने आहार जी, पपौरा जी, तारंगा जी आदि क्षेत्रों पर पानी व बिजली की सप्लाई की मूलभूत सुविधाओं के परिवर्द्धन व सुधार पर विपुल द्रव्य के योगदान से सराहनीय विकास कार्य किया है जो अन्यों के लिए अनुकरणीय है।

हमारे मुनिराजों/आर्यिकाओं की प्रेरणा से कई तीर्थ क्षेत्रों पर नए-नए छोटे-बड़े भव्य-अभव्य मन्दिरों का निर्माण होता जा रहा है जबकि वहां पहले ही से कई-कई मन्दिर मौजूद हैं। एक तीर्थ भक्त सुश्रावक जी ने अपना क्षोभ व्यक्त करते हुए लिखा है कि तीर्थ राज श्री सम्मेद शिखर जी पर मधुबन की मुख्य सड़क पर छोटे-बड़े मन्दिरों का निर्माण द्रुत गति से होता चला जा रहा है जबकि क्षेत्र पर पहले से ही इतने मन्दिर मौजूद हैं कि उन सबकी भली प्रकार वन्दना करना ही कठिन है। हमारी समझ में तीर्थ क्षेत्रों पर नए मन्दिरों का निर्माण अत्यावश्यक स्थिति में ही किया जाना चाहिए तथा यदि किसी नवीन मन्दिर का निर्माण किया जाये तो वह वास्तु कला का एक उत्कृष्ट नमूना हो।

अन्त में, मैं यह जोर दे कर कहना चाहूंगा कि हमारे प्राचीन तीर्थ क्षेत्र हमारी संस्कृति की प्राचीनता के प्रतीक हैं, हमारी धार्मिक आस्था के प्रेरणा स्रोत हैं, पूर्वजों द्वारा सौंपी हुई हमारी विरासत हैं। उनका जीर्णोद्धार, सार-सम्हाल व सुरक्षा नए मन्दिर-तीर्थों के निर्माण की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण एवं श्रेयस्कर है। हमारे एक पूज्य युवाचार्य जी (जो स्वयं अपने नाम से करोड़ों की लागत से एक नए तीर्थ का निर्माण करा रहे हैं) का कहना है कि पुराने जीर्ण-शीर्ण तीर्थों का मोह छोड़ो, नयों का निर्माण करो। यह तो ऐसे ही हुआ कि अपने वृद्ध माता-पिता का मोह छोड़ो, वह अब अप्रासंगिक हो गये, नई पीढ़ी के निर्माण पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करो। सुनते हैं प्राचीन स्पार्टा (यूनान का एक राज्य) में राष्ट्र को युवा बनाए रखने के लिये वृद्धों को मार दिया जाता था। कदाचित् हमारे ये आचार्य जी भी उसी स्पार्टन संस्कृति के पोषक हैं।

—अजित प्रसाद जैन

——

विचार-विन्दु

मन्दिर, मूर्ति और वैराग्यता

—श्री धन्य कुमार जैन

मन्दिर का अर्थ है मन का घर या स्थान। मन को बाहर भटकने से रोकने के लिये स्थान। मन को अपने आत्म-स्वरूप में वापिस लाने का स्थान। वाह्य वातावरण से मुक्त कर जीव को एकाग्रता के वातावरण में लाने का स्थान। अपरिचित से परिचय कराने का स्थान, आपस में प्रेम बढ़ाने का स्थान मन्दिर है। बिना मन को वश में या एकाग्र किये दुखों का अन्त होगा नहीं। इसी लिये मन्दिर जाने का आग्रह है। मन्दिर में स्थापित मूर्तियों का नहीं उनकी मुद्रा का दर्शन करें कि संसार की झंझटों से कैसे मुक्ति पाई जा सकती है। मूर्तियां पाषाण की हैं। जड़ हैं। न कुछ लेती हैं, न देती हैं, किन्तु उनकी वैरागी शान्त मुद्रा चेतन है जो दर्शनार्थी के मन को प्रभावित करने में सक्षम है। उनके प्रभुता के गीत न गाकर उनकी वैरागी मुद्रा का अनुकरण करने का विचार लाना होगा।

जब शरीर मेरा नहीं है तो उसकी सुरक्षा व्यवस्था में क्यों परेशान होना, अतएवं इस परेशानी से बचने के लिये नग्नता स्वीकार की। चलने-फिरने-हिलने का कार्य करने की परेशानी से मुक्ति पाने के लिये पैर-पर-पैर तथा हाथ-पर-हाथ रख कर स्थिर हो बैठ गये। देखने-सुनने-जानने की क्रिया को रोकने के लिये दृष्टि को नाक के उठे अग्र भाग पर केन्द्रित कर बैठ गये। मूर्ति की यह वीतरागता की मुद्रा सभी जीवों को भेदभाव रहित सभी कालों में एक सी क्रिया न कर, पर से सम्बन्ध तोड़ एकात्म स्वरूप वाला होने की प्रेरणा देती है। जो देखकर जाना जा सकता है उसको समग्र रूप में शास्त्र बताने में समर्थ नहीं है। दूसरे लिखने वालों के विचारों से प्रभावित होने से शास्त्र विकृत रूप ले लेते हैं। विकृति को आगे से रोकने के लिये तथा सभी को भेदभाव रहित समझ देने के लिए मूर्तियां विवाद रहित होती हैं।

खेद है कि मूर्ति निर्माताओं की भावनाओं की उपेक्षा कर शास्त्रकारों ने पाषाण की मूर्तियों को भगवान बना दिया। शास्त्रकार कहते और जानते हैं कि मूर्ति पाषाण की होने से उसमें नेतृत्व शक्ति नहीं है। जो जीव जैसा कर्म करता है वैसा फल पाता है। इसमें कोई फेर बदल करने को अवकाश नहीं है। फिर भी मूर्तियों में भगवान की स्थापना कर उन्हें शक्तिशाली मान उनकी भक्ति में सामान्य जन को लगा कर वैरागता के स्थान पर सरागता का भक्त बना दिया। अब जैन धर्मावलम्बी सुसज्जित सुन्दर मन्दिर में वीतरागी मूर्ति को पधार कर अपने को कृतार्थ करने में लगा है। उसकी भक्ति के गीत गाकर सद्गति पाने का भरोसा करता है। उसे अब मूर्ति में वैरागता की छवि दिखाई नहीं देती है और न उपदेशक वैरागता की मुद्रा का सामान्य जन को दिग्दर्शन कराते हैं। कुछ लोग तो उस वैरागता की प्रतीक मूर्ति को आभूषण पहनाकर अपने राम की अभिव्यक्ति करने में लगे हैं। आज मूर्तियां राग-द्वेष के अभाव का साधन न होकर कलह का कारण हो गई हैं और मन्दिर शांति का स्थान न होकर अशांति के घर हो गये हैं। पाषाण की सेवा में लगे लोग महावीर के "जियो और जीने दो" के मन्त्र को भूल गये हैं।

जीव को कर्म मुक्त होने के लिये नग्नता राग-द्वेष भावों की चाहिए, कपड़ों की नहीं। मूल्य राग-द्वेष भावों के अभाव करने का है अन्यथा कपड़े उतार नंगे हुए सभी पूज्य हो जावेंगे। राग-द्वेष भावों के अभाव होने पर जीव सरल परिणामी हो जाता है। कठोरता से नियम पालन की क्रिया कर्मबन्ध का कारण होती है। आहार आदि आडम्बर पूर्ण क्रियायें करना, कराना और करने का उपदेश देना ज्ञानावरण कर्म बन्ध का कारण होते हैं। आहार देना व्यवहार धर्म है, आत्म धर्म नहीं।

आज मुनियों, त्यागी, वैरागियों की बढ़ती संख्या का कारण अभ्यास से लाई वैराग्यता तथा नग्नता है जिससे उनके प्रति अश्रद्धा

(शेष पृष्ठ ३०१ पर)

चिन्तन कण

भगवान ऋषभदेव की निर्वाण भूमि

—श्री अजित प्रसाद जैन

श्वेताम्बर आगमों एवं निर्वाण काण्ड स्तोत्र में आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की निर्वाण स्थली का स्मरण अष्टापद के नाम से किया गया है। भगवज्जिनसेनाचार्य एवं प्रायः सभी अन्य दिगम्बर जैन पुराणकारों ने कैलाश पर्वत को ही भगवान की निर्वाण भूमि बताया है। श्वेताम्बर साहित्य के अध्येता डा० कुमारपाल देसाई का कहना है कि "अष्टापद तीर्थ कहां है, आज इसके प्रमाणभूत दस्तावेज नहीं मिलते किन्तु यह निर्विवाद है कि यह किसी पर्वत पर ही है।" कदाचित् इन दोनों से अभिप्राय हिमालय के किसी एक ही पर्वत शिखर से है, और कदाचित् उस शिखर की संरचना ऐसी होगी कि दूर से देखने में उसके आठ कोण उभरे हुए दिखाई पड़ते हों जिससे उसका नाम अष्टापद भी रहा हो। पर अभी तक विद्वानों ने ऐसे किसी पर्वत शिखर को चिन्हित करने का प्रयास किया नहीं

(पृष्ठ ३०० का शेष)

पैदा हुई है। मुनि वह है जो मन अर्थात् इच्छा का अभाव करने में लगा हो, त्यागी वह है जो सरल परिणामी हो, वैरागी वह है जो राग का अभाव करने में लगा हो। जैन दर्शन में मूर्ति का नहीं, मूर्ति की वैराग्य मुद्रा का महत्व है। दर्शन मुद्रा के करना हैं, मूर्ति के नहीं। मूर्ति अचेतन हैं, न देती है, न लेती है, किन्तु मुद्रा चेतन की है जो देती है, लेती नहीं। क्रिया करना धर्म नहीं, आचरण में लाना धर्म है। त्यागी-वैरागी वर्ग को उपरोक्त अनुसार अपने आचरण की आलोचना करना सम्यक् ज्ञान होने के लिए आवश्यक है। सम्यक् ज्ञान के अभाव में चरित्र का कोई महत्व नहीं है। सामान्य जन उनका अनुकरण करता है। अच्छे-बुरे का भेद-ज्ञान आलोचना करने से ही होता है। आलोचना निन्दा नहीं है, निन्दा बुराई करना है और आलोचना बुराई के प्रति सजग करना है। ★

मालूम पड़ता। आदि पुराण में कैलाश पर्वत की अयोध्या से दूरी का उल्लेख भी किया गया है पर उस दृष्टि से भी किसी पर्वत शिखर की पहचान 'कैलाश' से करने का प्रयास नहीं किया गया है।

हिमालय की पर्वत श्रेणियों में एक शिखर कैलाश-मानसरोवर भी है जिसे भगवान शिव का निवास स्थान माना जाता है। अनेक शिव भक्त तथा पर्वतारोही पर्यटक इस जोखम भरी दुर्गम पर्वत यात्रा पर प्रति वर्ष जत्थों में जाते हैं पर कोई तीर्थ भक्त जैन यात्री भी इन जत्थों में सम्मिलित होता हो, ऐसा सुनने में नहीं आया।

अभी कुछ वर्षों पूर्व हिमालय के दुर्गम पर्वतीय क्षेत्र की पद यात्रा करने वाले प्रथम दि० जैन सन्त पू० आचार्य श्री विद्यानन्द मुनि जी ने बद्रीनाथ धाम की यात्रा करके उसे ही भगवान ऋषभ-देव की निर्वाण स्थली घोषित किया था तथा श्री बद्रीनाथ के विग्रह को भी मूल रूप में भ० ऋषभदेव की ही मूर्ति बताया था। तब से जैन समाज का ध्यान श्री बद्रीनाथ धाम की ओर आकृष्ट हुआ है तथा इसे एक जैन तीर्थ क्षेत्र के रूप में भी विकसित किया जा रहा है।

श्री भारतवर्षीय दि० जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी के मुख पत्र **तीर्थ वन्दना** के अगस्त ९८ के अंक में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार "**आदि नाथ निर्वाण-स्थली बद्रीनाथ** में चौबीस तीर्थंकरों की चौबीसी वेदियों में चौबीस चरणों की स्थापना का आयोजन २६ जून, १९९८ को विशेष समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। फाउन्डेशन के अध्यक्ष श्री देव कुमार सिंह कासलीवाल (जो भारतवर्षीय दि० जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी के कार्याध्यक्ष भी हैं) ने अपने सम्बोधन में दूर-दूर से आये यात्रियों का स्वागत करते हुए क्षेत्र सम्बन्धी विस्तृत जानकारी दी तथा कहा कि भारतीय दिगम्बर जैन समाज की इस युग की यह सबसे बड़ी उपलब्धि है। फाउन्डेशन के मन्त्री तथा श्रीनगर (गढ़वाल) की नगर पालिका के अध्यक्ष श्री मोहन लाल ने बताया कि समूचे हिमालय क्षेत्र में किसी समय जैन संस्कृति एवं जैनों का बाहुल्य था तथा उनका परिवार भी अनेक पीढ़ियों से श्रीनगर में बसा हुआ है।"

पूज्य आचार्य श्री विद्यानन्द मुनि जी जैन वाङ्मय के एक गहन अध्येता एवं चिन्तक हैं। उन्होंने अवश्य ही जैन वाङ्मय में वर्णित कैलाश/अष्टापद के चिन्हों को बद्रीनाथ के पर्वत में लक्षित करके ही इसे भ० आदि नाथ की निर्वाण भूमि घोषित किया होगा, तथा इसका यह भी तात्पर्य हुआ कि वर्तमान में कैलाश-मानसरोवर के नाम से विख्यात पर्वत शिखर का भ० आदिनाथ की निर्वाण भूमि से कुछ लेना-देना नहीं है। यदि आचार्य श्री ने अपने इस निष्कर्ष की पृष्ठ भूमि को भी स्पष्ट किया होता तो इतिहास-खोजियों द्वारा भी इस निष्कर्ष को सहज ही स्वीकार कर लिया जाता।

इस सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि **श्रीमद् भागवत्** के पंचम स्कन्ध में ऋषभ अवतार के प्रसंग में वर्णन किया गया है कि "महाराज नाभिराय युवराज ऋषभदेव को राज सिंहासन पर अभिषिक्त कर मरुदेवी के साथ तपस्या करने के लिये बद्रिकाश्रम चले गये।" किन्तु इस ग्रन्थ के रचयिता ने भी भ० ऋषभदेव के बद्रिकाश्रम में तपस्या करने या शरीर त्यागने का कोई उल्लेख नहीं किया है। जैन वाङ्मय में तो बद्रिकाश्रम का नाम भी कहीं नहीं मिलता, न ही उस में इस क्षेत्र का कोई महत्व है।

पिछले कुछ वर्षों में मुख्यतया पू० आ० विद्यानन्द जी व पू० आर्यिका ज्ञानमती जी की प्रेरणा से भ० ऋषभदेव पर कई विचार गोष्ठियां आयोजित हुई हैं। क्या ही अच्छा होता यदि बिद्वानों के इन जमावड़ों में भगवान ऋषभदेव की कल्याणक भूमियों की सही पहचान पर भी प्रकाश डलवाया गया होता। अभी तो उनकी तथा भगवान राम की अयोध्या के विषय में कुछ विद्वानों का मानना है कि वह कहीं भारत के उत्तर पश्चिम में (तक्षशिला या काबुल के आस-पास) रही होगी। वर्तमान अयोध्या में ८वीं शताब्दी ईसा पूर्व के पहले की मानव बस्ती के अभी तक कोई चिन्ह नहीं प्राप्त हुए हैं। दीक्षा कल्याणक जब कि आर्यिका ज्ञानमती जी अयोध्या के बाहर सिद्धार्थक वन में हुआ बतलाती हैं उन्हीं के शिष्य व भ्राता कर्मयोगी ब्र० रवीन्द्र कुमार प्रयाग में बट वृक्ष के नीचे सम्पन्न हुआ मानते हैं। (देखें, **सम्यग्ज्ञान**, अगस्त ९८)। ★

पर्यावरण और जीवदया

हमारी आस्थाएं और प्रकृति

—डा० सुधांशु कुमार जैन

हमारी संस्कृति प्रकृति का मान करती है। इसीलिए हमारे देश में नन्दा देवी, वैष्णो देवी, पारसनाथ, गिरनार व आबू जैसे मनोरम पर्वतीय क्षेत्र, गंगा, नर्मदा व कृष्णा जैसी नदियां, तथा वट, पीपल व तुलसी जैसे पौधों को पवित्र एवं पूज्य माना जाता है। मन्दिरों के निकट के वन भी आश्रमों की भांति सुरक्षित बच सके हैं। इन आस्थाओं के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि अनेक पर्वतों, नदियों, वनों और वृक्षों को आस्था और विश्वास ने बचा रखा है।

जिस वन में ऋषि मुनियों के आश्रम होते थे, अथवा जहां आज भी कोई साधु, महन्त अपनी कुटिया बना लेते हैं, वहां एक ओर तो प्राकृतिक वनस्पति की क्षति कम होती है, दूसरी ओर वहां नाना प्रकार की औषधीय तथा अन्य उपयोगी पौधे उगाकर, आश्रमों की शोभा बढ़ती है। भारत के अनेक प्रांतों में पवित्र वनों के नाम से आज भी अनेक सुन्दर वन बचे हुए हैं, जैसे देवरासी, देवरकडू, लालिगंडो। इन पवित्र वनों के प्रति स्थानीय ग्रामीणों की आस्था बहुत प्रबल है। इन से सूखी लकड़ी निकालना या मिट्टी खोदना तक वर्जित है। ऐसा करने से देवी का प्रकोप हानि कर सकता है। आज इन आस्थाओं से छोटे-छोटे अनेक क्षेत्र सुरक्षित रह सके हैं।

इससे भी अधिक महत्व की बात है कुछ वृक्षों या पौधों से सम्बन्धित आस्थाएं व धारणाएं। अनेक आदिमजातियों के कबीलों के नाम वृक्षों के नाम पर हैं, जैसे मध्य प्रदेश में सेमल वृक्ष से 'सेमरिआ', सलाई से 'सलैआ', ढ़ाव से 'ढ़ानिक', ऊमर से 'उमरिया', सन से 'सनरिआ', पीपल से 'पीपर बरेदिआ', फिरकों के नाम हैं। ये फिरके अपने नाम वाले पौधों से सम्बन्ध मानते हैं, और उन्हें क्षति नहीं पहुंचाते। गोंड जाति बेचांदी का कन्द, केवल व्रत के दिन खाती हैं। इससे पौधों को अधिक क्षति नहीं होती।

अण्डमान द्वीप में रतालू की एक जाति का कन्द खाया जाता है। आदिवासी यह मानते हैं कि रतालू वर्षा ऋतु के देवताओं का पौधा है, अतः वर्षा ऋतु में इसे नहीं खोदते।

पश्चिम बंगाल के लोढा सलफी, नारियल तथा बेल को पवित्र मानते हैं और उन्हें नष्ट नहीं करते।

असम की मिकिर जाति का विश्वास है कि उनके पूर्वजों की आत्माएं सप्तपर्णी (छातिम) के वृक्ष पर निवास करती हैं, और यह वृक्ष न पाने पर भटक सकती हैं। वे शमशान भूमि में इसके वृक्ष लगाते हैं। इनका विश्वास है कि मनुष्य की उत्पत्ति घोघर (तूम) वृक्ष के नीचे हुई थी। अपना मकान बनाते समय इस वृक्ष का एक टुकड़ा लगाना आवश्यक मानते हैं, इसीलिये इस वृक्ष को उगाते हैं और क्षति से बचाते हैं।

देवी-देवताओं की मूर्ति के लिये नाना प्रकार के काष्ठ का प्रयोग होता है। इनमें भी संरक्षण की भावना से कुछ काष्ठ निर्धारित हैं। जैसे ब्राह्मणों के देवी-देवताओं के लिए देवदार, चन्दन व महुआ, क्षत्रियों के लिए बेल, पीपल, रीठा व खैर, वैश्यों के लिए सीसम, पुत्रंजीवा व गुड़हल, तथा शूद्रों के लिए आम, साल, अर्जुन व तेंदू के काष्ठ। इस में वर्णभेद की भावना जो भी रही हो, यह स्पष्ट है कि कुछ दो-चार वृक्षों को अधिक दबाव से बचाने हेतु अनेक वृक्षों का निर्धारण उपयोगी बात है।

कुछ ग्रहों को भी विशेष पौधों से सम्बन्धित बताया गया है, जैसे सूर्य (रविवार) को आकड़ा (मदार), चन्द्रमा (चन्द्रवार) को पलाश, मंगल को खैर, बुध को लटजीरा (अपामार्ग), बृहस्पति को पीपल, शुक्र को कुशा घास, तथा शनि को घोनारेआ वृक्ष से।

प्राचीन काल में यज्ञों में कुछ विशेष वृक्षों की काष्ठ जलाने की आज्ञा थी। यह भिन्न क्षेत्रों में वही जातियां थीं जो बाहुल्य में प्राप्य थीं।

(शेष पृष्ठ ३०६ पर)

जिज्ञासा

शोधादर्श-३५ में पृ० १६२ पर प्रकाशित श्री शान्तिलाल के० शहा की जिज्ञासा के सम्बन्ध में दो जिज्ञासु पाठकों ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं।

श्री प्रकाश चन्द्र जैन :

आपके पास कोई व्यक्ति आया, जिसने गुड़ कभी नहीं खाया और वह आप से गुड़ के विषय में जानकारी प्राप्त करना चाहता है। आप उसे समझाते हैं। अनेक तर्क और व्याख्यायें देते हैं। क्या उसे गुड़ अथवा उसके स्वाद का ज्ञान हो जायेगा ? उत्तर स्पष्ट है—नहीं। अब थोड़ा गुड़ उसकी जिह्वा पर रख दीजिए। उसे गुड़ के स्वाद का अनुभव हो गया। सब कुछ स्पष्ट हो गया। अतः एक बात सिद्ध हुई कि ज्ञानादि गुण अनुभव गम्य हैं। भाषा केवल संकेत दे सकती है, अनुमान लगाने में सहायता कर सकती है, जैसे कि गुड़ की मिठास के लिए शकर, मिठाई इत्यादि के उदाहरण देना। आध्यात्मिक जगत में तर्क और उपमायें खोजने का भी कोई उपाय नहीं है।

अब आप गुड़ की डली पर पिसी मिर्च का लेप कर दीजिए। उसे खाइये। परिवर्तित वस्तु में तीन अवस्थायें प्राप्त हुईं : गुड़ के

(पृष्ठ ३०५ का शेष)

श्रमण संस्कृति में भी वृक्षों को विशेष महत्व प्राप्त है। बौद्ध-धर्म के संस्थापक भगवान बुद्ध को वृक्ष के नीचे ही बोधि प्राप्त हुई थी। जैनधर्म में श्रद्धा के केन्द्र सभी तीर्थंकरों को किसी-न-किसी वृक्ष के नीचे ही केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। बौद्धधर्म और जैनधर्म में विहार आदि के लिए पेड़ काटने का भी निषेध है।

पौधों के संरक्षण के बारे में हमारी संस्कृति एवं विश्वासों से जो तथ्य ज्ञात हैं, उनके प्रसार की आवश्यकता है। शबरी के बेर, अशोक वाटिका में सीता जी का बन्दी रहना, आदि प्रसंगो के प्रचार व प्रसार सामग्री में उपयोगी होने की सम्भावना है। ★

स्वाद में मिठास का ह्रास (व्यय), कटुता का आभास (उत्पाद), किन्तु गुड़ मूल रूप में उतना ही मीठा है (ध्रौव्य)। उसका स्वाद केवल अव्यक्त है। पर वस्तु अर्थात् मिर्च के लेप को सार्थक प्रयास द्वारा हटा दीजिये। गुड़ के गुण स्पष्ट हो जायेंगे।

आत्मा के ज्ञानादि गुण भी पर वस्तु अर्थात् कृत कर्मों के संयोग के कारण अव्यक्त हैं। संवर और निर्जरा कृत्यों के उपयोग द्वारा वे व्यक्त हो जाते हैं। आत्मा की उस दशा को शुद्धात्मा अथवा सिद्धात्मा कहते हैं।

अब एक और प्रयोग कीजिए। आप में चलने की शक्ति है। आप एक रस्सी से अपनी टांगें बांध दीजिए। शक्ति कहां गयी? कहीं नहीं। बस रस्सी खोल दीजिये, वह विद्यमान है। इसी प्रकार कार्मण शरीर भी स्व कृत कर्म समूह का बन्धन मात्र है। उसे उपरोक्त प्रयास द्वारा हटा दीजिये। आत्मा के ज्ञानादि गुण प्रत्यक्ष हो जायेंगे।

जस्टिस एम० एल० जैन :

जैन दर्शन की मुख्य मान्यताओं में सर्वोपरि यह है कि आत्मा अनन्त वीर्य, अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान और अनन्त सुख की धारक है। यह कथन निश्चय नय से हैं याने जो असलियत बताता है आत्म द्रव्य की। आत्म द्रव्य का शुद्ध असली रूप ऐसा ही है जिसको किसी और शब्दावली से वर्णित नहीं किया जा सकता। इसलिये उसको 'स्व' रूप कहा गया है। यह अवस्था कर्म से मुक्ति पाने के बाद की है। इससे पहले आत्मा अनादि से सदैव कर्मों से बंधा रहता है। कर्म बन्ध एक क्रम है और अपने पुरुषार्थ के द्वारा कर्मों को नष्ट कर लेने पर ही चैतन्य अपनी सम्पूर्णता के साथ उक्त अनन्त चतुष्टय के साथ प्रकट होता है। तब तक अष्ट कर्म उसको नचाते सताते रहते हैं। कर्मबद्धता की दशा में उसकी मूल शक्ति नष्ट नहीं होती, केवल आवृत्त हो जाती है जैसे बादल से सूर्य और उसका प्रकाश। आत्म द्रव्य सत् है और नष्ट नहीं हो सकता, मन्द या नष्ट होते हैं व्यतिरेक। जो कुछ इस विश्व में नष्ट नहीं होता वही द्रव्य

है, उसके पर्याय विनश्वर हैं, इसीलिए तो हम कहते हैं आत्मा ईश्वर ही है। कार्मण शरीर, याने पुद्गल, आत्मा याने चैतन्य, को नष्ट नहीं करता, वह उसको कमजोर, बेहद कमजोर, कर सकता है— बल्कि आत्मा ही कर्मों को नष्ट करती है। जहां कहीं भी आत्मा की शक्ति नष्ट करने का प्रयोग हुआ है वह इसी अर्थ में समझा जाना चाहिए। यह भ्रम पैदा होता है भेद-विज्ञान की अवधारणा पूरी तरह से न होने से। श्री शहा के सवाल का अपनी बुद्धि के अनुसार उत्तर दे तो दिया मगर उसी सिलसिले में चन्द सवाल और भी हैं।

एक उदाहरण लें। संसार के कई प्रदेशों में से एक लन्दन शहर की कई मुर्गीशालाओं में से किसी एक मुर्गीशाला की कई मुर्गियों में से किसी एक मुर्गी ने किसी एक दिन दो अण्डे दिये। उनमें से मुर्गी के दो बच्चे पैदा हुए। उनमें से एक को मुर्गीपालक ने किसी को बेचा, उसने किसी और को बेचा जिसने उसे खौलते पानी में डालकर मार कर पका कर खा डाला। सहूलियत से समझने के लिये हम मुर्गी के इस बच्चे को क नाम देते हैं। क की इस सारी कहानी में इतना समझ में आया कि मुर्गी का बच्चा होना गोत्र, नाम, असाता वेदनीय, अन्तराय और आयु कर्म वर्गणाओं द्वारा हुआ। पिछले किसी जन्म में मान लें भारत के दिल्ली शहर की किसी नाली के कीड़े की आत्मा के द्वारा आकर्षित होकर कर्म परमाणुओं का कार्मण शरीर में परिवर्तन होकर जो कर्म बन्ध हुआ उसके कारण क के साथ उपरोक्त प्रकार से लन्दन में मुर्गी का बच्चा होना आदि वह सब घटित हुआ। यह भी मान लें कि क की माता मुर्गी के भी इसी-किसी प्रकार का कर्म बन्ध था वह भी क की जीवन घटना का कारण बना, किन्तु सवाल—

१. यह किसके द्वारा कैसे और कब तय किया गया कि दिल्ली के किसी जीव की आत्मा का लन्दन में विशिष्ट शरीर क ही (अन्य नहीं) धारण करेगी? यदि यह पुद्गल नाम कर्म का कृत्य है तो क्या उन पुद्गल परमाणुओं के द्वारा इस विशिष्ट कृत्य का निश्चय

और निर्वहन करने में किसी चेतन तत्त्व का योगदान नहीं है ? यदि नहीं, तो क्या निर्जीव पुद्गल भी यह सब कर सकते हैं ? यदि आत्मा यह तय करती है तो फिर कर्म पुद्गल क्या बेमानी नहीं हो जाते ?

२. क्या यह सही है कि (सिद्ध) आत्मा अरूपी है मगर निराकार नहीं है ?

३. जीव के पांच शरीरों में से मुख्य तीन हैं—औदारिक, तैजस और कार्मण। तैजस व कार्मण शरीर दोनों ही औदारिक शरीर में तमाम आत्म प्रदेशों में दूध में पानी की तरह व्याप्त होते हैं या कि एक के ऊपर एक अलग-अलग परते हैं ?

४. जल कायिक जीवों में आत्मा होती है, तो बरसते पानी, नदी, समुद्र और प्रलय के वारि समूह में एक ही आत्मा होती है या असंख्य आत्मायें और एकाधिक हैं तो क्या उनकी अलग-अलग पहचान सम्भव है ? ऐसा ही प्रश्न अग्नि, वायु और पृथ्वी के बारे में भी है।

५. कहते हैं जल दो गैस (वायु कह सकते हैं) याने आक्सीजन और हाइड्रोजन के संयोग से बनता है, उसमें आत्मा का प्रवेश कब और किस प्रकार होता है ?

६. शंका समाधान के लिए मुनि के मस्तक से निकलने वाला चेतन आहारक पुतला जब केवली या श्रुत-केवली के पास जाता है, तब—

(क) क्या उसके अपने औदारिक तैजस और कार्मण शरीर भी होते हैं ?

(ख) क्या इस दौरान पुतले का मूल औदारिक शरीर से सम्बन्ध बना रहता है ? यदि हां, तो किस प्रकार ?

७. जब आत्मा किसी नवीन स्कन्ध/शरीर/गर्भ में प्रवेश करता है तो क्या उसका कोई रास्ता होता है या सारे शरीर में युगपद् प्रवेश करता है ?

जो माननीय मनीषी जवाब देने का अनुग्रह करें, वे शास्त्र का सन्दर्भ भी साथ में दें तो उत्तम रहेगा। ★

समाचार विमर्श

—श्री अजित प्रसाद जैन

और दो तीर्थों का उदय

(१) **अहोभाग्य तीर्थ क्षेत्र**—पू० आ० श्री पुष्पदन्त सागर म० के तरुण-शिष्य मुनि श्री तरुण सागर म० ने अपने ग्यारहवें दीक्षोत्सव के सुअवसर पर उ० प्र० के राज्यपाल महामहिम श्री सूरजभान के सानिध्य में तथा विशाल जैन समुदाय की उपस्थिति में भारी करतल ध्वनि के बीच घोषित किया कि अब से उनका वर्तमान चातुर्मास स्थल **श्री जैन बाग मन्दिर, सहारनपुर, सम्पूर्ण विश्व में अहोभाग्य तीर्थ क्षेत्र के नाम से एक नया** तीर्थ जाना जायेगा।

सहारनपुर से प्रकाशित **विद्या पुष्प** (मासिक) के अगस्त १९९८ के अंक में इस समाचार के अलावा एक टिप्पणी भी प्रकाशित की गई है जिसमें कई बातों में भाग्योदय तीर्थ से, जो कि पू० आ० श्री विद्यासागर म० की प्रेरणा व शुभाशीर्वाद से सागर (म० प्र०) के निकट स्थापित किया गया है, साम्यता, गिनाई गई है—यथा, दोनों ही तीर्थ दिगम्बर मुनियों द्वारा स्थापित किए गये हैं, सागर व सहारनपुर दोनों जिलों का प्रथम अक्षर स है तथा दोनों तीर्थों का नाम भी एक जैसा हीं है।

जिन मन्दिर तीर्थंकर महा प्रभु के समवशरण के प्रतीक हैं तथा वेदी गन्ध कुटी की। अतः सभी जैन मन्दिर (सहारनपुर के जैन बाग मन्दिर सहित) स्वतः ही एक तीर्थ क्षेत्र के समान वन्दनीय एवं पूजनीय हैं। तथापि हमारे प्राचीन तीर्थ क्षेत्रों का विशेष महत्व है। वे तीर्थंकरों के कल्याणकों व अन्य महामुनियों के मोक्ष गमन से पवित्र हुई या किसी प्राचीन तीर्थंकर प्रतिमा के अतिशय से प्रसिद्धि को प्राप्त हुई पुण्य भूमियां हैं तथा हमारी धार्मिक आस्था के केन्द्र हैं। सहस्रों-सहस्रों वर्षों से मुमुक्ष जन आत्म-साधना के लिए इन क्षेत्रों की वन्दना को जाते रहे हैं तथा उनके अलौकिक वातावरण में असीम शान्ति का अनुभव करते रहे हैं। सहारनपुर का जैन बाग मन्दिर उपरोक्त तीर्थ क्षेत्रों की श्रेणी में नहीं आता।

महामुनियों की चरण रज से पवित्र भूमियों को भी तीर्थ कहा गया है। भूधर कविराय के अनुसार 'ते गुरु जहं पग धरें, जग में तीरथ जेह'। कदाचित् हमारे युवा श्री अपने को उन महामुनियों की ही श्रेणी में गिनते हों।

भाग्योदय तीर्थ से नवोदित अहोभाग्य तीर्थ की साम्यता सिद्ध करने का प्रयास बचकाना सा ही लगता है। भाग्योदय तीर्थ तो दि० जैन समाज द्वारा सागर में स्थापित किये जा रहे विशाल चिकित्सालय सहित एक चिकित्सा संस्थान की जन कल्याणकारी योजना का नाम है जिसकी प्रेरणा दे कर सन्त शिरोमणी आचार्य श्री विद्यासागर म० ने समाज को नया दिशा निर्देश दिया है। अहोभाग्य तीर्थ में किसी ऐसी लोकोपकारी योजना प्रारम्भ किये जाने का तो कोई समाचार है नहीं।

(२) **पारसनाथ किला (बढ़ापुर)**—"तहसील नगीना, जिला बिजनौर (उ० प्र०) के बढ़ापुर कस्बे से ५ कि० मी० दूर स्थित ऐतिहासिक एवं धार्मिक महत्व के पारसनाथ किला अवशेषों को जैन तीर्थ के रूप में विकसित करने के लिये शिक्षाविद् डा० अशोक कुमार जैन के संयोजकत्व में श्री पार्श्वनाथ किला क्षेत्र (बढ़ापुर) विकास समिति का गठन किया गया है।.....इस स्थल से प्राप्त शिलालेखों के अनुसार इस किले का निर्माण मध्य काल में हुआ था। वर्तमान में इस स्थल पर डेढ़-दो वर्ग कि० मी० के क्षेत्र में कुछ छोटे-बड़े टीले फैले हुए हैं जिनमें किसी प्राचीन बस्ती के अवशेष दबे पड़े हैं। बड़े मुख्य टीले पर एक प्राचीन दुर्ग के अवशेष प्राप्त हुये हैं जिससे इस स्थल को सर्वे आफ इण्डिया के वर्ष १९१४ में बने नक्शे में 'किला पारसनाथ' दिखाया गया है। खुदाई करने पर यहां से भगवान महावीर की एक बड़ी मूर्ति व एक छोटी मूर्ति प्राप्त हुई थी जो अब बिजनौर के दि० जैन मन्दिर में स्थापित हैं। एक अन्य टीले से भ० पार्श्वनाथ की एक खण्डित मूर्ति भी प्राप्त हुई थी जिस पर सं० १०१० में प्रतिष्ठित किये जाने का लेख अंकित है।..... सन् १९५१ तक इस स्थान पर घना जंगल था।.....बाद में पंजाब

से आए कुछ काश्तकारों एवं अवकाश प्राप्त सैनिकों ने जंगल साफ करके खेती करनी शुरू कर दी। यद्यपि इस स्थल से अनेक पुरावशेष प्राप्त हुए हैं, पुरातत्त्व विभाग द्वारा यहां के टीलों की विधिवत् खुदाई किया जाना अभी शेष है। यहां की वर्तमान खेतिहर बस्ती में कोई जैन परिवार नहीं है।"

—(वीर, दि० २२ सितम्बर, १९९८)

पारसनाथ किला अवश्य ही किसी समय जैन संस्कृति का एक समृद्ध केन्द्र रहा होगा तथा उसमें भगवान पार्श्वनाथ का कोई विशाल भव्य मन्दिर रहा होगा जिसकी दूर-दूर ख्याति के कारण ही कदाचित् इस किले का नाम ही 'किला पारसनाथ' पड़ गया होगा। पर आज न तो इस किले का तथा इसके संस्थापकों व शासन करने वालों का कोई इतिहास ही उपलब्ध है और न ही यह स्थल भ० पार्श्वनाथ के जीवन की किसी ज्ञात घटना या अनुश्रुति से जुड़ा है। वर्तमान में इस स्थल पर कोई प्राचीन मन्दिर या स्तम्भ भी नहीं हैं जिसका जीर्णोद्धार-विकास किया जाना अपेक्षित हो। यह तीर्थ क्षेत्रों की किसी श्रेणी—सिद्ध क्षेत्र, तीर्थंकरों के कल्याणक क्षेत्र, अतिशय क्षेत्र, प्राचीन कला केन्द्र—में भी नहीं आता और न ही यह किसी मुनिराज की समाधि स्थली है जिनकी पावन स्मृति यह संजोए हुए हो। यहां के टीले पुरातत्त्व विभाग द्वारा संरक्षित भी होंगे तथा उनका उत्खनन भी उक्त विभाग की सुविधा एवं कार्य योजना पर निर्भर होगा तथा जब कभी इन टीलों का उत्खनन होगा भी तो उससे प्राप्त पुरावशेष राज्य संग्रहालयों में भेज दिये जाएंगे।

इस जैन-जन-विहीन स्थल पर एक नवीन दि० जैन तीर्थ का निर्माण करने के लिये आयोजक गण कोई छोटा-बड़ा भू-खण्ड क्रय करके उस पर समाज से इस योजना के नाम पर जितनी धन राशि संग्रह कर पाएंगे उसके अनुसार किसी भव्य-अभव्य मन्दिर-धर्मशाला आदि का निर्माण कर अपने संकल्प की पूर्ति करेंगे और फिर समस्या खड़ी होगी उसके रख-रखाव की, सुरक्षा की। किसी धार्मिक अनुश्रुति या अतिशय से जुड़े न होने के कारण हमें नहीं लगता कि यह

तथाकथित तीर्थक्षेत्र यात्रियों की धार्मिक आस्था को जागृत कर पायेगा ।

विगत कुछ वर्षों में कई नये दि० जैन तीर्थ क्षेत्रों का उदय हुआ है—यथा ॐ गिरि, चूल गिरि, मानतुंग गिरि, सिद्धोदय, ज्ञानोदय, पुष्पगिरि, आदि-आदि । इनमें से प्रत्येक के निर्माण पर समाज के करोड़ों रुपये खर्च हुए हैं और हो रहे हैं । ये सब किसी न किसी मुनिराज/आर्यिका माता के कल्पना प्रसून हैं तथा उन्हीं के मार्ग दर्शन तथा धन संग्रह में सक्रियता के कारण मूर्त रूप ले पाए हैं । कदाचित् इन्हीं से प्रेरणा ले कर तथा इनकी सफलता से उत्साहित होकर ही श्री पार्श्वनाथ किला दिगम्बर जैन क्षेत्र के निर्माण की एक और योजना समाज के दोहन के लिये बनी है ।

जम्बू द्वीप, तीस चौबीसी, और अब त्रिलोक मन्दिर निर्माण की महायोजना

सिद्ध क्षेत्र सोनागिर पर एक जैन विश्वविद्यालय स्थापना की योजना के लिये 'सिंह-रथ प्रवर्तन' से प्रसिद्ध (तथा आर्यिका संयम-भूषण मती प्रकरण से और भी विशेष प्रसिद्धि को प्राप्त) आचार्य श्री विद्याभूषण सन्मति सागर म० अब दि० जैन अतिशय क्षेत्र बड़ा गांव (जिला मेरठ) में एक १८४ फुट ऊंचे विशाल त्रिलोक मन्दिर का निर्माण करा रहे हैं जिसके ऊपरी भाग में खुले आकाश के मध्य एक ४१ फुट ऊंची सिद्ध भगवान की साकार प्रतिमा भी स्थापित होगी जो ३० कि० मी० दूर दिल्ली के लाल किले से भी दिखाई देगी । तीस हजार वर्ग गज के भूखण्ड पर साढ़े सात करोड़ रुपये की अनुमानित लागत से निर्मित किये जाने वाले इस महामन्दिर के द्वारा १४ राज उत्तंग (त्रिलोक) की पुरुषाकार संरचना की जैन अवधारणा को प्रतीकात्मक मूर्त रूप प्रदान किया जाएगा । अर्था-भाव के कारण हम अभी तक भगवान महावीर स्वामी की जन्म कल्याणक स्थली वैशाली तथा पुरातात्त्विक एवं ऐतिहासिक खोज के आधार से सही माने जाने वाली निर्वाण भूमि पावानगर को भव्य

तीर्थ क्षेत्रों के रूप में विकसित नहीं कर पाए हैं। काश कोई प्रभावक सन्त इन्हें भी अपना कर्म क्षेत्र बना लेते !

गोलाकोट क्षेत्र—कटे सिरों की बरामदगी

"मध्य प्रदेश के गोलाकोट (पचराई) क्षेत्र से गत २४-२५ अप्रैल की रात्रि में मूर्ति-तस्करों द्वारा ४९ प्रतिष्ठित मध्य युगीन अति भव्य पाषाण तीर्थंकर व शासन देवियों की प्रतिमाओं में से ४६ के सिर काट कर ले जाने की घटना ने पूरे देश की जैन समाज को झकझोर दिया था। स्थानीय पुलिस की निष्क्रियता से क्षुब्ध समाज के शीर्ष नेताओं के प्रयास से केन्द्र सरकार ने इस तस्करी-काण्ड की जांच सी० बी० आई० को सौंप दी थी। सी० बी० आई० की सरगर्मी रंग लाई तथा सात अपराधी गिरफ्तार कर लिये गये हैं और ३२ कटे सिर बरामद किये गये हैं। इनमें से १८ छोटी मूर्तियों के सिरों को जमीन में गाड़ दिया गया था तथा १४ बड़ी मूर्तियों के सिर एक बोरे में डाल दिये गये थे।"

(जैन गजट, १२ नवम्बर, १९९८)

३२ सिरों के बरामद कर लिये जाने से जैन समाज को निश्चय ही भारी राहत मिली है। अब इन सिरों को उनकी मूल मूर्तियों के धड़ों पर कुशल कारीगरों द्वारा जुड़वाने के लिये आवश्यक कार्यवाही की जानी चाहिए। सत्तर के दशक में देवगढ़ क्षेत्र से भी मध्ययुगीन भव्य पाषाण मूर्तियों के सिर भारी संख्या में काटकर तस्कर ले गये थे। बाद में इन सिरों से भरे कई बोरे विदेश भेजे जाने के पूर्व ही पुलिस की पकड़ में आ गये थे। उस समय हमने उत्तरांचल दि० जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी के संयुक्त महामन्त्री की हैसियत से भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग से लिखा-पढ़ी करके उनके वैज्ञानिकों की देख-रेख में उन्हीं के कुशल कारीगरों से कटे हुए सिरों को उनकी मूल मूर्तियों के धड़ों पर सही पहचान कराकर जुड़वाया था। उन कारीगरों द्वारा यह कार्य इतनी कुशलता से किया गया था कि सहज ही यह मालूम नहीं पड़ता कि इन मूर्तियों का जीर्णो-

द्धार किया गया है। सी० बी० आई० द्वारा बरामद किये गये सिरों को गोलाकोट क्षेत्र की मूर्तियों के धड़ों पर वैज्ञानिक तरीके से जुड़वाने के लिये भी इसी प्रकार की कार्यवाही की जानी चाहिए।

प्रकाशित समाचारों से ऐसा मालूम पड़ता है कि गोलाकोट क्षेत्र पर चौकीदारी की पर्याप्त व्यवस्था नहीं रही है। चौकीदारी की समुचित व्यवस्था होना तो अत्यावश्यक है ही, यह भी वांछनीय है कि पहाड़ी की तलहटी में बसे ग्राम में किसी धर्मनिष्ठ जैन परिवार को बसाने का भरसक प्रयास किया जाए। महाराष्ट्र व मध्य प्रदेश के ग्रामीण अंचलों में ऐसे अनेक जैन परिवार मिलेंगे जो गरीबी की रेखा के आस-पास रहने के लिए विवश हैं। यदि भा० दि० जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी/तीर्थ संरक्षिणी महासभा गोलाकोट जैसे जैन-जन-विहीन क्षेत्रों पर या उनकी निकटस्थ बस्ती में बस कर छोटा-मोटा व्यापार स्थापित करने के लिये किसी उद्यमी जैन युवक/परिवार को १०-२० हजार रु० का प्रोत्साहन अनुदान देने की कोई योजना बनावें तो हमारी समझ में ऐसी योजना से लाभ उठाने वाले उपयुक्त पात्रों के मिलने में कठिनाई नहीं होगी। इस योजना का लाभ उठाने वाले परिवार से अनुदान के एवज में केवल यह अपेक्षा की जानी चाहिए कि वह क्षेत्र पर नियमित रूप से पूजा-उपासना करे तथा क्षेत्र की सामान्य देखभाल में समाज के एक सदस्य की भांति अपना योगदान करे। इसका यह आशय कदापि नहीं है कि क्षेत्र के वैतनिक कर्मचारियों में कोई कटौती की जाए।

हमें यह समझना होगा कि नवीन धर्मायतनों के निर्माण की अपेक्षा प्राचीन तीर्थक्षेत्रों तथा प्राचीन मन्दिरों व उनकी पुरासम्पदा का संरक्षण और सुरक्षा करना कहीं अधिक महत्वपूर्ण एवं श्रेयस्कर है।

——

प्रतिष्ठा प्रदीप—ले०-पं० नाथू लाल जैन शास्त्री; प्रकाशक-श्री वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति, दि० जैन अतिशय क्षेत्र गोम्मट-गिरि, इन्दौर-४५२००१; १९९०; पृष्ठ सं० २३४; मूल्य रु० १५०/-

दिगम्बर जैन समाज के वरिष्ठ प्रतिष्ठाचार्य, वयोवृद्ध, प० नाथूलाल जी जैन शास्त्री, संहितासूरि, ने अपने ६० वर्ष के प्रतिष्ठा कार्य के अनुभव के आधार पर इस प्रतिष्ठा विधि प्रदर्शक ग्रंथ का संकलन किया है। ग्रन्थ कर्ता इस ग्रन्थ के निर्माण की आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए प्रस्तावना में कहते हैं कि अभी तक कोई ऐसा प्रतिष्ठा पाठ नहीं था जिसमें सम्पूर्ण विधि दर्शायी गई हो, अतः यह ग्रन्थ नए प्रतिष्ठा-विधि शिक्षणार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकेगा। इस ग्रन्थ में आचार्य जयसेन के प्रतिष्ठा ग्रन्थ का अनुसरण मुख्य रूप से किया गया है, तथापि सहायता अन्य प्राचीन प्रतिष्ठा ग्रन्थों से भी ली गई है।

अ० भा० दि० जैन विद्वत् परिषद ने दि० १७ अक्टूबर १९८७ के अपने इन्दौर अधिवेशन में एक प्रस्ताव के द्वारा आधुनिक भाषा में विधि-विधान के स्पष्टीकरण के साथ प्रतिष्ठा पाठ संकलित करने का काम पंडित जी को सौंपा था। फलस्वरूप इस ग्रन्थ की रचना हुई।

प्रतिष्ठाचार्य पं० गुलाबचन्द जी 'पुष्प' (टीकमगढ़) के पास भी एक संकलन था तथा यह विचार हुआ कि दोनों विद्वान परस्पर परामर्श कर इसे एकरूपता प्रदान करें। परस्पर परामर्श तो हुआ किन्तु कुछ क्रियाओं में विचार भेद होने के कारण एकरूपता प्राप्त न हो सकी तथा पुष्प जी द्वारा संकलित ग्रन्थ **प्रतिष्ठा रत्नाकर** भी अलग से प्रकाशित हो गया है। (दृष्टव्य, **शोधादर्श**-३५, पृ० १६४-६७)।

प्रतिष्ठा प्रदीप में जिनेन्द्र प्रतिमा की प्रतिष्ठा दक्षिणायन सूर्य में करने का निषेध किया गया है तथा तीर्थंकर के माता-पिता मनुष्यों में बनाने को आगम विरुद्ध बताते हुए उनकी स्थापना

मंजूषा (आदि) में ही करने का विधान किया गया है। श्री 'पुष्प' इन दोनों बातों से सहमत नहीं है।

महाराष्ट्र का जैन समाज—ले०-श्री महावीर सांगलीकर; प्रकाशक-जैन फ्रेण्ड्स, २०१, मुम्बई-पुणे मार्ग, चिंचवड़ पूर्व, पुणे-४११०१९; १९९८; पृष्ठ-३१; मूल्य रु० १५/-

इस लघु पुस्तिका में विद्वान लेखक ने महाराष्ट्र के मूल जैन समाज की सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक व राजनीतिक स्थिति, और प्रख्यात मुनियों व समाज सेवियों, सामाजिक संगठनों व संस्थाओं के विषय में संक्षेप में सारगर्भित प्रकाश डाला है। पुस्तिका से कई रोचक जानकारियां मिलती हैं, जैसे कि महाराष्ट्र में देश की सम्पूर्ण जैन समाज का २८% बसता है जिसके ८५% महाराष्ट्र के मूल निवासी हैं, साक्षरता शत-प्रतिशत है, अधिकांश खेती-किसानी करते हैं, शायद ही कोई गांव ऐसा हो जिसमें कोई एक भी जैन घर न हो, मूल निवासी सभी दिगम्बर जैन हैं, अनेक गांवों में जैन मन्दिर हैं, ३० जैन पत्र-पत्रिकाएं मराठी भाषा में प्रकाशित होती हैं, **वहां सो० क्ष० कासार (पारम्परिक व्यवसाय—चूड़ियों तथा बरतनों का व्यापार), नाई, आदि कुछ ऐसी भी जातियां हैं जो आज जैन समाज से बिछुड़ गई हैं पर उनमें जैन संस्कार अभी भी विद्यमान हैं; आदि-आदि।**

पुस्तिका में बहुत सारी जानकारियां गागर में सागर की तरह भर दी गई हैं। लेखक का प्रयास सराहनीय है। इसकी उपयोगिता और बढ़ जाती यदि इसमें महाराष्ट्र प्रदेश के जैन तीर्थों, पुरा संपदा तथा भट्टारक पीठों व अन्य प्रदेशों से आ कर बसे जैन बन्धुओं के उल्लेखनीय योगदान पर भी कुछ प्रकाश जाला जाता। हम आशा करते हैं कि अगले संस्करण में इन विषयों पर भी ध्यान दिया जाएगा। पुस्तिका संग्रहणीय है।

[हमने जैन धर्म से बिछुड़ी महाराष्ट्र की सो० क्ष० कासार तथा नाई आदि जातियों के विषय में कुछ और जानकारी प्राप्त करने के लिए श्री सांगलीकर जी को पत्र लिखा था। उत्तर में प्राप्त

उनके पत्र के इस विषय से सम्बन्धित अंश नीचे उद्धृत किये जा रहे हैं—

"सो० क्ष० कासार देवेन्द्र कीर्ति भट्टारक स्वामी जी से सम्बन्धित थे पर अब यह मठ नष्ट हो चुका है। नाई लोगों का स्वतन्त्र भट्टारक पीठ नहीं था। शायद वे जिनसेन भट्टारक पीठ से सम्बद्ध रहे होंगे। प्रयत्न करने पर ये दोनों जातियां पुनः जैन धर्म में लौट सकती हैं। लेकिन यह करेगा कौन ? इसके लिए धन की नहीं बल्कि सामाजिक दृष्टि की आवश्यकता है। जैन समाज का यह दुर्भाग्य है कि उनकी सामाजिक दृष्टि इतनी महान है कि वे अपने मन्दिर में बन्दरों और सांपों को प्रवेश देंगे लेकिन अजैनों को प्रवेश नही देंगे। डा० बाबा साहब अम्बेडकर जैन बनना चाहते थे लेकिन जैन समाज के विरोध के कारण उन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार किया।

तथा-कथित **अखिल भारतवर्षीय संस्थाएं जाति विशेष की संस्थाएं बन** कर रह गई हैं और उनके जैनत्व की व्याख्या में अपनी ही **जाति के लोग** बैठते हैं। इसीलिये महासमिति, महासभा के **पदाधिकारी मराठी जैन नहीं, बल्कि** राजस्थानी खण्डेलवाल आदि हैं। **आज जैन समाज** में सामाजिक दृष्टि का नितान्त अभाव है। **सब लोग** मन्दिर निर्माण, जीर्णोद्धार, पंच-कल्याणक आदि में ही **व्यस्त हैं**..... ।"

श्री सांगलीकर जी के पत्र की उपरोक्त पंक्तियों में बृहत्तर जैन समाज द्वारा मराठी जैन समाज की उपेक्षा किए जाने पर उनका क्षोभ मुखर हुआ है। देश की समग्र जैन समाज का प्रतिनिधित्व करने का दावा करने वाली हमारी अखिल भारतीय संस्थाओं—महासमिति व महासभा के शीर्ष नेताओं को गम्भीरता पूर्वक विचार कर ऐसे कदम उठाने चाहियें जिससे कि उक्त संस्थाओं पर किसी जाति या वर्ग विशेष के वर्चस्व व एकाधिकार का आरोप न लग सके तथा किसी प्रदेश की मूल जैन समाज अपने को उपेक्षित न महसूस करे। यदि इन संस्थाओं को सम्पूर्ण दि० जैन समाज का

प्रतिनिधित्व के अपने दावे को सार्थक करना है तो इन्हें समाज की जड़ों से जुड़ना ही होगा।

महाराष्ट्र की जैन धर्म से बिछुड़ी जातियों को धर्म में पुनर्स्थापित करने के लिए आज सराकोद्धारक पू० उपा० श्री ज्ञान सागर म० जैसे किसी धुन के पक्के कर्मठ सन्त की आवश्यकता है जो इस कार्य को ही अपना ध्येय बना ले। हमारे कई भट्टारक स्वामी व विद्वान नियम पूर्वक प्रति वर्ष विदेशों में धर्म-प्रचार के लिये जाते हैं यद्यपि उनका प्रचार कार्य प्रायः प्रवासी जैन धर्मावलम्बियों तक में ही सीमित रहता है। हमारे कई साधु-साध्वी भी महाराष्ट्र मूल के हैं पर आश्चर्य है कि उनमें किसी का भी ध्यान इस ओर नहीं गया। विगत काल में हमारी भट्टारक संस्था ने दक्षिण की मूल जैन समाज को धर्म से जोड़ रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। क्या श्रवणबेलगोला के प्रबुद्ध भट्टारक स्वामी जी इन बिछुड़ी जैन जातियों को धर्म में पुनर्स्थापित करने हेतु महाराष्ट्र की विलुप्त भट्टारक पीठों को पुनर्जीवित किए जाने पर विचार करेंगे ?]

—अजित प्रसाद जैन

नवप्रभात : सर्वतोभद्र इष्टसिद्धी छत्तीसी—सम्पादक/संकलनकर्ता—विवित्सु अजित 'सौरई'; प्रकाशक—दिगम्बर जैन वीर विद्या संघ गुजरात, बी/१२, सम्भवनाथ अपार्टमेंट, बरवारिया कालोनी, उस्मानपुरा, अहमदाबाद; १९९६; पृष्ठ ५०५+१७ व १८ चित्र; मूल्य रु० ५४/-

प्रस्तुत पुस्तक में विद्वान सम्पादक ने आबाल-वृद्ध सभी श्रावकों के षड् आवश्यकों की सम्पूर्ति हेतु दैनन्दिन उपयोग में आने वाले विभिन्न रचनाकारों के पाठों और अन्य ज्ञानवर्द्धक स्वाध्यायोपयोगी सामग्री का—संप्रक्षालन, परमेष्ठी, बालकीय, प्रौढ़, प्रबुद्ध, रक्षणीय, वाचनक, आनन्दप्रद और संप्रसादन—नामक नौ खण्डों में संकलन किया है। इस उपयोगी श्रमसाध्य संकलन और उसके सुसम्पादन के लिये ब्रह्मचारी जी साधुवाद के पात्र हैं।

अपने 'पंच परमेष्ठी मंथन' आलेख में ब्रह्मचारी जी ने अनादि मूलमन्त्र की मौलिकता और उसके विभिन्न पदों आदि का सारगर्भित विशद विवेचन किया है। णमोकार मन्त्र के प्रथम पद के तीन रूप—'अरहंताणं', 'अरिहंताणं' और 'अरुहंताणं' मिलते हैं। आजकल 'अरिहंताणं' रूप सर्वाधिक प्रचलन प्राप्त है और इस पुस्तक में भी वह प्रचुरता से प्रयुक्त हुआ है। इसका आशय है 'कर्मरूपी शत्रुओं का हनन करने वालों को'। किन्तु जैन धर्म के मर्म 'अहिंसा परमो धर्मः' को दृष्टिगत रखते हुए और व्याकरण की दृष्टि से 'अरहंताणं', अर्थात् 'पूज्यों को' (प्रशंसनीय या योग्य व्यक्तियों को), रूप अधिक निर्दोष एवं समीचीन है, जैसा कि प्रस्तुत विवेचन में भी स्वीकार किया गया है। 'अर्हत्', 'अर्हन्' और 'अर्हन्त' शब्दों का प्रयोग 'जिन', अर्थात् 'जिनेन्द्र', के लिये **ऋग्वेद**, **भागवत**, **धम्मपद** आदि जैनेतर साहित्य में बहुलता से हुआ है। प्राचीन जैन आचार्यों द्वारा भी प्रायः इन्हीं शब्दों का प्रयोग किया गया है। मागधी प्राकृत में और अपभ्रंश में 'अलहंत' के साथ-साथ 'अलिहंत' का प्रयोग हुआ बताया जाता है और उसी के आधार पर उसका संस्कृत रूप 'अरिहंत' (कर्म शत्रुओं का नाश करने वाला) बना लगता है। तमिल में यह 'अरुह' और कन्नड में 'अरुहंत' के रूप में प्रयुक्त हुआ है। आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने **मोक्खपाहुड** में अर्हंत के लिये 'अरुहा' शब्द का प्रयोग किया है। १७२ ई० पू० में कलिंगाधिपति खारवेल द्वारा खण्डगिरि-उदयगिरि में उत्कीर्ण कराये गये हाथीगुम्फा शिलालेख में भी 'अरहंतानं' अंकित हुआ है। अतः अहिंसामयी जैन धर्म की आत्मा के अनुकूल 'अरहंताणं' पद का प्रयोग ही अभीष्ट है।

जरा सोचिये—लेखक पं० पद्मचन्द शास्त्री; प्रकाशक—वीर सेवा मन्दिर, २१, दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२; १९९८; पृष्ठ १६०; मूल्य रु० १०/-

प्रस्तुत पुस्तक में वयोवृद्ध विद्वान पण्डित पद्मचन्द जी के समय-समय पर निबद्ध व प्रकाशित विचारमूलक ७० आलेख समाहित किये गये हैं। इन आलेखों के माध्यम से पण्डित जी ने सहज

ढंग और सरल भाषा में आज जैन जनजीवन, चाहे श्रावक हों अथवा त्यागी व्रती साधु, में व्याप्त विभिन्न विसंगतियों की झांकी प्रस्तुत कर प्रबुद्ध जन को उनके प्रति सोचने के लिए प्रेरित करने का उपक्रम किया है। इसके लिये पण्डित जी साधुवाद के पात्र हैं।

विवेक मार्त्तण्ड—प्रणयनकार आचार्य श्री सूर्यसागर म०; संपादक—श्री प्रकाश हितैषी शास्त्री; प्रकाशक—श्री दरबारीमल शकुंतला जैन पारमार्थिक ट्रस्ट, ७४, दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२; चौथी आवृत्ति; पृष्ठ १८२+९; नि:शुल्क

ग्वालियर के ग्राम पेमसर में १८८३ ई० में जन्मे श्री हजारीमल ने आचार्य शान्तिसागर महाराज (छाणी) के पास १९२४ ई० में ऐलक दीक्षा ली और तदनन्तर मुनि और आचार्य सूर्यसागर के नाम से विख्यात हुए। २० वर्ष तक चातुर्मासों में जनता को धर्मलाभ देते हुए उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की थी जिनमें **संयमप्रकाश, विवेकमार्त्तण्ड**, और **आर्षमार्ग** विशेष लोकप्रिय हुए। उनमें से **विवेक मार्त्तण्ड** को सम्पादित कर पं० प्रकाश हितैषी शास्त्री ने विवेच्य कृति के रूप में प्रस्तुत किया है। साथ ही, शास्त्री जी ने स्वरचित 'जिनेन्द्र स्तुति'; पं० हुकुमचन्द शास्त्री भायजी (टीकमगढ़) द्वारा ११ सरल दोहों में निबद्ध लौकिक 'स्वास्थ्य ज्ञान', स्व० पं० मुन्नालाल जी समगोरया (सागर) द्वारा रचित 'भक्ति प्रवाह या अपूर्व दर्शन', और अज्ञातकर्तृक 'उद्बोधन तथा सुमन संचय' को भी इस कृति में समाहित किया है।

आचार्य श्री ने इस पुस्तक में सरल भाषा में यथाप्रसंग अन्य ग्रन्थों से दोहे, कवित्त, श्लोक आदि उद्धृत करते हुए और कहीं-कहीं प्रश्नोत्तर शैली में निश्चय धर्म और व्यवहार धर्म को समझाया है तथा कई मानवोपयोगी बातों पर प्रकाश डाला है। उन्होंने धर्मकार्य विवेकपूर्वक किये जाने पर बल दिया है। आचार्य श्री की कृति को उपर्युक्त अतिरिक्त सामग्री के साथ सम्पादित कर यह उपयोगी स्वरूप प्रदान करने हेतु प्रकाश शास्त्री जी और उसे प्रका-

शित कर जिज्ञासु पाठकों को निःशुल्क सुलभ कराने हेतु उक्त पारमार्थिक ट्रस्ट साधुवाद के पात्र हैं।

श्वेताम्बर मत कैसे बना ?—संकलनकर्ता-उपाध्याय श्री विद्यासागर; सम्पादक—विधानाचार्य पं० कमल कुमार 'कमलांकुर'; प्रकाशक—श्री रोहित कुमार जैन, ९, द्वारिकापुरी, इन्दिरा नगर, लखनऊ-२२६०१६; १९९८; पृष्ठ ४२; मूल्य रु० १०/-

१३वीं शती में हुए आचार्य रत्ननंदी द्वारा संस्कृत में रचित 'भद्रबाहुचरित्र', जिसका हिन्दी अनुवाद स्याद्वाद विद्यालय, काशी, में रहे स्व० पं० उदयलाल काशलीवाल द्वारा किया गया था, के आधार पर इस पुस्तक में श्वेताम्बर आम्नाय के उदय में आने की कहानी दी गई है।

कथा में प्रयुक्त शब्दावली और अंश कहीं-कहीं स्वमतपोषण के उत्साह के अतिरेक में उभय आम्नायों में सद्भाव लाने से विपरीत दिशा में चले गये हैं।

महाकवि आ० विद्यासागर ग्रन्थावली (खण्ड १ से ४)—प्रकाशक—आचार्य ज्ञानसागर बागर्थ विमर्श केन्द्र, ब्यावर (राजस्थान); १९९६; प्रथम खण्ड—पृष्ठ ५२८, मूल्य रु० ८५/-; द्वितीय खण्ड—पृष्ठ ६८२, मूल्य रु० १००/-; तृतीय खण्ड—पृष्ठ ४८८, मूल्य रु० ८५/-; चतुर्थ खण्ड—पृष्ठ ६१६, मूल्य रु० १००/-

आचार्य विद्यासागर महाराज द्वारा प्रणीत साहित्य पाठकों को यथासंभव एक साथ सुलभ हो सके, इस सद्उद्देश्य से आ० ज्ञानसागर बागर्थ विमर्श केन्द्र, ब्यावर, ने उत्तम कागज पर उत्तम मुद्रण और भव्य साज-सज्जा से युक्त सचित्र व सजिल्द, प्रभूत व्ययसाध्य, इन चार खण्डों में उनके **मूक माटी** महाकाव्य को छोड़कर प्रायः सभी रचनाओं को प्रकाशित किया है। प्रत्येक खण्ड के आरम्भ में प्रकाशकीय के उपरान्त कृतियों के परिचय हेतु आचार्य श्री के सुशिष्य मुनि सुधासागर जी प्रणीत 'महाकवि आचार्य विद्यासागर जी महाराज की साहित्य साधना' शीर्षक से आलेख तथा आचार्य श्री के व्यक्तित्व परिचय हेतु श्री वीरेन्द्र गोदिका का अंग्रेजी आलेख

Acharya Vidya Sagar (A Sage with Difference) दिया हुआ है।

खण्ड-१ में आचार्य श्री के संस्कृत में निबद्ध ५ शतक काव्यों—श्रमण शतकम्, निरंजन शतकम्, भावना शतकम्, परिषह-जय शतकम् तथा सुनीति शतकम्, को हिन्दी अनुवाद सहित स्थान दिया गया है।

खण्ड-२ में प्राचीन आचार्यों की रचनाओं के हिन्दी में पद्यानुवाद, यथा—जैन गीता (समणसुत्तं), कुन्दकुन्द का कुन्दन, निजामृतपान, द्रव्य संग्रह, अष्ट पाहुड, नियमसार, द्वादशानुप्रेक्षा, समन्तभद्र की भद्रता, गुणोदय, रयणमंजूषा, आप्तमीमांसा, इष्टोपदेश, गोम्मटेश अष्टक, कल्याण मन्दिर स्तोत्र, नन्दीश्वर भक्ति, समाधि सुधा शतकम्, योगसार और एकीभाव स्तोत्र, को समाहित किया गया है।

खण्ड-३ में उनकी हिन्दी पद्य रचनाओं—नर्मदा का नरम कंकर; डूबो मत, लगाओ डुबकी; तोता क्यों रोता है?; निजानुभव शतक; मुक्तक शतक; दोहा स्तुति शतक; पूर्णोदय शतक; सर्वोदय शतक; उनकी प्रारम्भिक रचनाओं; सात अन्य भक्ति परक रचनाओं; तथा एक अंग्रेजी कविता My-Self, को संजोया गया है।

खण्ड-४ उनके अनेक विविधात्मक प्रवचनों का संकलन है।

इस ग्रन्थावली का यह भव्य प्रकाशन इस बात का द्योतक है कि आज निर्ग्रन्थ अपरिग्रही आचार्य के भक्तगण उनके नाम पर इतना परिग्रह सहर्ष जुटाने में समर्थ हैं।

सूर्योदय शतक—रचयिता–आचार्य श्री विद्यासागर; प्रकाशक—पं० दौलतराम शास्त्री, डा० नागरे के पीछे, परकोटा वार्ड, सागर; १९९८; पृष्ठ २४

इस लघु पुस्तिका में आचार्य श्री द्वारा हिन्दी में रचित १०२ नीति दोहे हैं।

छायांकन (संस्कृत सूक्तियों का पद्यानुवाद)—अनुवादक-साहित्याचार्य डा० परमानन्द जड़िया, विद्यावचस्पति; प्रकाशक—मधुलिका प्रका-

शन, ५१, खत्री टोला, मशकगंज, लखनऊ-२२६०१८; १९९८; पृष्ठ ८४; मूल्य रु० ४०/-

संस्कृत साहित्य-सागर मानव जीवन को व्यवहारिक बनाने वाले और सुसंस्कृत करने वाले सुभाषितों से परिपूर्ण है। विद्यावाचस्पति, साहित्याचार्य जड़िया जी ने उस सागर में अवगाहन कर ३४२ सूक्तिमणियों का बड़ी कुशलता से छायांकन दोहों में करके हिन्दी (अवधी और ब्रज) भारती के भण्डार को समृद्ध करने का स्तुत्य कार्य किया है। इस क्षेत्र में अभी और बहुत कुछ कार्य किया जा सकता है। दसवीं शती में हुए आचार्य सोमदेव कृत **नीतिवाक्यामृत** और उसी शती में मुंजराज के समय में हुए आचार्य अमितगति के **सुभाषितरत्नसंदोह** प्रभृति कई नीतिपरक सुभाषित ग्रन्थों का हिन्दी पद्यानुवाद होना अभीष्ट है।

पद्मांजलि : पत्रं, पुष्पं, फलं, तोयं—रचनाकार-डा० पद्माकर द्विवेदी; प्रकाशक—द्विवेदी बन्धु, महाराजगंज, बस्ती; १९९४; पृष्ठ ८०+१०; मूल्य रु० २०/-

यह मंजुल-मधुर काव्यकृति चार खण्डों में है। प्रथम खण्ड 'पद्म पीयूष' (फलम्) आध्यात्मिक भावों की मंजूषा है तो द्वितीय खण्ड 'पद्म-पराग' (पुष्पम्) में शृंगार का मकरन्द है। तृतीय खण्ड 'पद्म-प्रसंग' (पत्रम्) में सामयिक विषयों को स्पर्श किया गया है और चतुर्थ खण्ड 'पद्म-प्रमोद' (तोयम्) में विनोद और हास्य की फुलझड़ियां हैं। इस रससिक्त कृति के प्रणयन के लिये डा० द्विवेदी साधुवाद के पात्र हैं।

—रमा कान्त जैन

JINAMANJARI, Vol. 18, No. 2, Oct. 1998—Ed. Dr. S. A. Bhuvanendra Kumar; Pub. Brahmi Jain Society, 4665 Moccasin Trail, Mississauga, Canada L4Z 2W5; Pages 68 + 4

The issue contains articles from Japanese scholars Dr. Fuginaga Sin (The Story of Visnukumara),

Dr. Atsusi Uno (A Study of Syadvada) and Kiyomi Nagao (Jaina Theory of Transmigration), and an English scholar Dr. Peter Flugel (Jainism and the Western World), besides those from Dr. N. Suresh Kumar, Amar Singh Jain, K. L. Banthia and Dr. N. L. Jain. It also carries brief reports of the Conferences on Jainism held in the Lund University (Sweden) and Harvard University (U.S.A.). The Journal is doing useful work in acquainting the American, European and Asian peoples with Jainism.

पञ्चाल, खण्ड १०, १९९८—सम्पादक—डा० ए० एल० श्रीवास्तव; प्रकाशक—पञ्चाल शोध संस्थान, ५२/१६, शक्कर पट्टी, कानपुर-२०८००१; पृ० १४८ + ४ व ४४ चित्र

प्रस्तुत अंक में २४ शोध निबन्ध (१७ हिन्दी में और ७ अंग्रेजी में) के अतिरिक्त कन्नौज के इतिहास के शोधक विद्वान स्व० श्री महेन्द्र नाथ मिश्र (ज० १९-२-१९१३, निधन १०-२-१९९८) के प्रति श्रद्धांजलि, डा० ए० एल० श्रीवास्तव का सम्पादकीय, पञ्चाल शोध संस्थान के ग्यारहवें अधिवेशन की रिपोर्ट तथा साहित्य समीक्षा, समाहित हैं। श्री कृष्ण कुमार का 'भगवान महावीर की निर्वाण भूमि पावा की पहचान' विषयक और डा० के० एस० शुक्ल का A Unique Jaina Tirthankara Image from Sanchankot (Distt. Unnao) विषयक निबन्ध जैन विद्या के लिए प्रासंगिक हैं। सभी लेख शोध-खोज की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इनके सुसंपादन के लिये डा० श्रीवास्तव साधुवाद के पात्र हैं।

तित्थयर, वर्ष २२, अंक १ (अप्रैल १९९८)—संपादिका—श्रीमती लता कुमारी बोथरा; प्रकाशक—जैन भवन, पी-२५, कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता-७०००७; पृ० २३२

यह अंक 'पूर्वांचल में सराक संस्कृति और जैन धर्म' पर विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया गया है। इसमें २४ आलेख बिहार, बंगाल,

असम और उड़ीसा में जैन धर्म के इतिहास तथा सराक जाति के इतिहास और संस्कृति पर प्रकाश डालते हैं। प्राप्त पुरासम्पदा के चित्र भी दिये गये हैं। सामग्री उपयोगी है। अंक संग्रहणीय है।

भजन-मणिमाला—संकलन–श्री लूण करण नाहर जैन, 'नाहर निकेतन' ५१४, राजेन्द्र नगर, लखनऊ-२२६००४; द्वितीय संस्करण १९९८; पृ० १५६ + viii + ४

प्रस्तुत संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण में १४५ भजन-पद-स्तुति आदि का संकलन श्री लूण करण नाहर जैन ने किया है। इनमें १७ रचनायें श्री नाहर की स्वयं की हैं जो उन्होंने १९५८ से ९८ के बीच लिखीं और ५ श्री प्रकाश चन्द्र जैन 'दास' की हैं। अन्य रचनायें विभिन्न श्वेताम्बर साधु-मुनियों की हैं। अधिकांश रचनाओं में भक्ति भाव के साथ गेय तत्त्व और प्रसाद गुण दीख पड़ता है। इस सुन्दर संकलन को प्रकाशित करने और निःशुल्क उपलब्ध कराने के लिये श्री नाहर और उनके परिवारजन साधुवाद के पात्र हैं।

सरल जैन विवाह संस्कार एवं नूतन गृह-प्रवेश व मुहूर्त विधि—संपादक व लेखक–पं० सरमन लाल जैन 'दिवाकर' शास्त्री; प्रकाशक–अ० भा० दिगम्बर जैन परिषद परीक्षा बोर्ड, १०, दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२; १९९८; पृ० ६४ + १६

लेखक ने जैन विधि से विवाह संस्कार का सरल हिन्दी भाषा में निरूपण किया है। साथ ही, दुकान-प्रतिष्ठान की मुहूर्त विधि, नूतन गृह प्रवेश विधि और दीपावली पूजन विधि का भी हिन्दी भाषा में निरूपण किया है। पुस्तक उपयोगी है और एक अभाव की पूर्ति करती है जिसके लिए पं० सरमन लाल जी साधुवाद के पात्र हैं।

भारतीय वाङ्मय में पार्श्वनाथ विषयक साहित्य—ले०–डा० जय कुमार जैन; प्रकाशक–प्राच्य श्रमण भारती, १२-ए, प्रेम पुरी, निकट जैन मन्दिर, मुजफ्फरनगर; १९९७; पृ० ४४+२; मूल्य रु० १०/-

डा. जय कुमार जैन ने इस पुस्तक में पार्श्वनाथ सम्बन्धी उपलब्ध ६४ कृतियों का संक्षिप्त परिचय दिया है। दोनों ही सम्प्रदायों

में समादृत सिद्धसेन-कुमुदचन्द्र का कल्याण मन्दिर स्तोत्र सर्व-प्राचीन उपलब्ध रचना है जिसका समय छठी शती ईस्वी माना जाता है। संकलन में १९वीं शती ई० तक की रचनाओं का परिचय है। रचनायें संस्कृत (पद्य और गद्य), प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, हिन्दी, कन्नड, गुजराती और मराठी भाषाओं में हैं और इनके लेखक दिगम्बर व श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायों के हैं। यह पुस्तक पार्श्व-नाथ के सम्बन्ध में उपलब्ध साहित्य का परिचय प्राप्त करने के लिये उपयोगी है।

कविता : बदलते सन्दर्भ—संपादक—डा० रामाश्रय 'सविता' एवं अन्य; प्रकाशक—प्रतिष्ठा साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्था, ई-४०१३/२६, सेक्टर १२, राजाजीपुरम्, लखनऊ; १९९८; पृ० ३५५ + xii; मूल्य रु० ३००/-

हिन्दी के १२० वर्तमान कवियों ने अपनी काव्य चेतना व सृजन विधा और कविता की उपयोगिता पर अपने चिन्तन और अनुभूति के आधार से संक्षेप में अपने विचार प्रकट किये हैं जो समग्र रूप से हिन्दी कविता की वर्तमान स्थिति को रेखांकित करते हैं। श्री रमा कान्त जैन ने ठीक ही कहा है कि "कोई भी बात चाहे जिस रूप, जिस विधा, जिस भाषा में कही जाय यदि वह सुनने-पढ़ने वाले को आनन्दित करती है, उससे रस वर्षा होती है, तो वह एक प्रकार से कविता ही है भले ही वह कविता का तथाकथित वेष न धारण किये हो।.....जो रचना जन-सामान्य को जितना स्पर्श करेगी, साथ ही सरल, सुबोध और सरस होगी, वह उतनी ही ग्राह्य होगी।" कवियों में १९१२ ई० से लेकर १९७४ ई० में जन्मे रचना-कार हैं जो एक प्रकार से चार पीढ़ियों की मनस्विता और अनुभूति की विविधता को दिग्दर्शित करते हैं। वयोवृद्ध श्री श्रीराम श्रीवास्तव 'कमलेश' (ज० ४-१०-१९१२) छन्दबद्ध कविता के पक्षधर हैं; कविता के माध्यम से राष्ट्रीय एकता, स्वाधीनता की रक्षा और भारतीय संस्कृति के सम्मान व सच्चरित्र निष्कलुष जीवन जीने की भावना भरना चाहते हैं, तथा कविता के भविष्य के विषय में

आश्वस्त नहीं हैं। युवा श्री सुशील कुमार रावत 'शील' (ज० २१-४-१९७४) स्वयं के लिए और समाज दोनों के लिए कविता लिखते हैं, छन्द मुक्त कविता को विचार प्रकाशन के लिए अधिक सहज मानते हैं, कविता द्वारा समाज में व्याप्त गन्दगी को दूर करना चाहते हैं और कविता के भविष्य के विषय में निराशावादी नहीं हैं। २०वीं शती की हिन्दी की साहित्यिक मनस्विता को समझने में यह संकलन सहायक होगा।

Jaina Karmology—by Dr. N. L. Jain; pub. Parshvanath Vidyapeeth, Varanasi-221005; 1998; pages 180; price Rs. 150/-

It is an English translation of the VIIIth chapter of the **Tattvartha-Raja-Vartika** of Akalanka on the **Tattvartha-Sutra** of Acharya Umaswami, by Dr. N. L. Jain who has also added supplementary notes to elucidate the subject. The 30-page Introduction deals with the **Tattvartha-Sutra** and its commentaries, the **Raja-Vartika** commentary of Bhatta Akalanaka, earlier work on the subject, points of difference between the Digambara and Svetambara doctrinal stances, methodology of translation, and details of chapter VIII, the subject matter of this book. As regards the validity of the Karma theory as a basis of reals, Dr. Jain is candid in concluding that with the advent of the theory of relativity and the principle of indeterminancy, the traditional Karma theory is more a subject of historical concern now though it may still have a hold on human psychology to catalyse the moral life The terse subject has been tackled with due technical insight. A brief note about the author, and index, are welcome. The bibliography is exhaustive; mention should have also been made of Dr. Jyoti Prasad

Jain's **The Jaina Sources of the History of Ancient India** wherein he has discussed the dates of Umaswami, Akalanka and other commentators.

KEINE GEWALT worte des Furbereiters Mahavira—by Herr Kurt Titze; pub. Verlag Clemens Zerling, Berlin; 1993; pp. 126 Illustrated

Mr. Kurt Titze is an inquisitive German gentleman. He had visited India in 1968, 1983 and 1991-92, and met some of the prominent Digambara, Svetambara, Sthanakavasi and Terapanthi Acharyas, Sadhus and Sadhvis. He also saw some of the pilgrim centres and temples, and also witnessed the rituals practised by the monks and nuns. In a tract **Why Jainism** (pub. 1993) he has given his impressions as to why he and his wife Martha got fascinated with Jainism. The instant book on Mahavira and Ahimsa has been done in German language. It contains all that he saw and read about Jainism upto 1993. For Westerners, particularly the Germans, it would serve to make them inquisitive about Jainism, Mahavira and Ahimsa.

Correlation of the Ages of Bhagavan Mahaveera and Bhagavan Gautama Buddha—by Dr. M. D. Vasantharaj; pub. Ahimsa Mandir Prakashan, Shri Raj Krishan Jain Charitable Trust, Ahimsa Mandir, Daryaganj, New Delhi-110002; 1997; pp. 89+xvi; price Rs. 75/-

दिल्ली विश्वविद्यालय के बौद्ध अध्ययन विभाग के अन्तर्गत 'लाला राज कृशन जैन स्मृति व्याख्यानमाला' के १६वें व्याख्यान के रूप में २० दिसम्बर, १९९६, को मद्रास और मैसूर विश्वविद्यालयों में जैन विद्या के आचार्य के रूप में कार्यरत रहे डा० एम० डी० वसन्तराज ने अपना यह अध्ययन प्रस्तुत किया था। इसमें भगवान

महावीर और गौतम बुद्ध की समसामयिकता पर प्रकाश डाला गया है। अध्ययन पांच प्रकरणों में विभक्त है—स्रोत सामग्री; बार्हद्रथों से राजा नन्द तक मगध के राजा; अवन्ति के राजाओं का काल-क्रम और महावीर के निर्वाण का परम्परागत समय; अवन्ति और मगध के महान राजा; और भगवान गौतम बुद्ध तथा भगवान महावीर के जीवन की मुख्य घटनाओं का समय, और उनके समय का अन्तः सम्बन्ध। परिशिष्ट में मगध और अवन्ति के राजाओं की और महावीर व बुद्ध की कालानुक्रमणिका दी गई है। १०६ टिप्पणियों में आवश्यक सन्दर्भों का निर्देश किया गया है। ब्राह्मणीय पुराणों, बौद्ध साहित्य और जैन साहित्य में उपलब्ध विभिन्न अनुश्रुतियों का तुलनात्मक अध्ययन करके डा० वसन्तराज इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि महावीर से बुद्ध ६ वर्ष जेठे थे और उन्होंने अपना धर्म प्रवर्तन महावीर से १४ वर्ष पहले किया था, परन्तु महावीर बुद्ध से पहले निर्वाण को प्राप्त हो गये थे। महावीर का निर्वाण वह ५२८ ई. पू. में मानते हैं और बुद्ध का परिनिर्वाण ५२५ ई. पू. में। श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी के कथानक से वह उज्जयिनी में नन्दवंश के 'नन्द चन्द्रगुप्त' को जोड़ते हैं और उसे महानन्द के नौ पुत्रों और महा-पद्मनन्द के बीच लगभग ३७३-३६७ ई. पू. में रखते हैं। महावीर निर्वाण की पारम्परिक तिथि ५२८-५२७ ई. पू. को ही वह स्वीकार करते हैं। डा. वसन्तराज का विवेचन मननीय है और ६ठी शती ई. पू. से ३री शती ई. पू. के ऐतिहासिक कालक्रम के निर्धारण में एक नई दिशा का संकेत करता है।

—डा० शशि कान्त

अभिनन्दन

उत्तरी कर्नाटक में नागानूर कालेज ऑफ़ आर्ट्स एण्ड कामर्स में भाषा प्राध्यापक **आर० ई० इच्छंगी** को उनके शोध-प्रबन्ध **कन्नड पार्श्वनाथ पुराण : एक तुलनात्मक अध्ययन** पर कर्नाटक यूनीवर्सिटी, धारवाड़, ने पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की।

श्रीमती मनोरमा जैन को उनके शोध-प्रबन्ध **महाकवि राजमल्ल की पंचाध्यायी : एक अध्ययन** पर काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय, वाराणसी, ने पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की।

शासकीय दिग्विजय महाविद्यालय, राजनांदगांव, के हिन्दी विभाग में कार्यरत **श्री चंद्र कुमार जैन** को उनके शोध-प्रबन्ध **आचार्य श्री विद्यासागर कृत मूक माटी का सांस्कृतिक अनुशीलन** पर पण्डित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर, ने पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की।

डा० भागचन्द जैन 'भास्कर', नागपुर, को उनके शोध-प्रबन्ध **मूक माटी : चेतना के स्वर** पर नागपुर विश्वविद्यालय ने डी० लिट्० की उपाधि प्रदान की। इसके पूर्व श्रीलंका और नागपुर विश्व-विद्यालयों से पालि एवं प्राकृत भाषा के विषयों पर **डा० जैन** दो बार डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त कर चुके हैं।

दिल्ली के प्रमुख समाज सेवी एवं भूतपूर्व महानगर पार्षद **श्री देवेन्द्र कुमार जैन** को **पशु क्रूरता निवारण परिषद** का अध्यक्ष मनोनीत किया गया है।

१० जुलाई को रांची में **डा० विद्यावती जैन**, आरा, को **मातुश्री इन्दुमती माता पुरस्कार** से सम्मानित किया गया।

स्वतन्त्रता दिवस पर दिल्ली के अतिरिक्त पुलिस कमिश्नर (प्रशासन) **श्री शान्ति कुमार जैन** को उनकी उल्लेखनीय सेवाओं के लिये सम्मानित किया गया।

स्वतन्त्रता दिवस पर ही लखनऊ के वयोवृद्ध समाजसेवी **श्री सलेक चन्द जैन** को सिंडीकेट बैंक, लखनऊ, द्वारा सम्मानित किया गया।

३१ अगस्त को जयपुर में राजस्थान के महामहिम राज्यपाल द्वारा नौगामा नगर (बांसवाड़ा जिला) के अहिंसाप्रेमी **श्री उत्सव जैन** को राज्य स्तर पर वन्य जीव सुरक्षा व पर्यावरण चेतना में उत्कृष्ट कार्य हेतु **राज्यस्तरीय सर्वोत्तम वृक्षवर्धक** पुरस्कार से सम्मा- किया गया।

१ सितम्बर को दाहोद नगर (गुजरात) में जैन प्रज्ञा प्रकाशन द्वारा **डा० सुशील कुमार जैन** (मैनपुरी) को वर्ष १९९८ का **आचार्य पुष्पदन्त सागर पुरस्कार** प्रदान किया गया।

प्राकृत भाषा के उन्नयन के लिये विशेष योगदान के लिए ५ सितम्बर को नई दिल्ली में कर्नाटक के **प्रो० बी० के० खड़बड़ी** को **आचार्य विद्यानन्द पुरस्कार** प्रदान किया गया और उन्हें **प्राकृत प्राज्ञ** की उपाधि से भी अलंकृत किया गया।

५ सितम्बर को ही रांची में **श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन** (फिरोजाबाद) को **वाणी रत्न** की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया।

२० सितम्बर को लखनऊ में आल इण्डिया कान्फ्रेन्स ऑफ इण्टलेक्चुअल्स, उ० प्र०, के तत्वावधान और अध्यक्ष विधान सभा उ० प्र० की अध्यक्षता में सम्पन्न हुए समारोह में फिरोजाबाद के प्रमुख कांच व्यवसायी उद्योगपति **श्री चक्रेश कुमार जैन** को **उत्तर प्रदेश रत्न** की मानद उपाधि से सम्मानित किया गया।

२६ सितम्बर को सी० एस० आई० आर० द्वारा दिल्ली में **प्रोद्यौगिक शील्ड** प्रदान की गई जिसे सीमेप में रसायन विभाग में सहायक निदेशक **डा० धर्म चन्द जैन** ने मलेरिया की नई औषधि आर्टीईथर को विकसित करने के लिए प्राप्त किया।

श्री अशोक कुमार पाटनी, अध्यक्ष, आर० के० मार्बल्स लि०, मदनगंज किशनगढ़ (राजस्थान) को संगमरमर उद्योग में मार्बल ब्लॉक्स एवं मार्बल स्लेब्स का विश्व में सबसे अधिक उत्पादन कर **लिम्का बुक ऑफ रिकार्ड्स** में नाम दर्ज कराने के लिये ११ अक्टूबर को सीकर (राजस्थान) में **जैन गौरव** की उपाधि से विभूषित किया गया।

१ नवम्बर को तिजारा में सुप्रसिद्ध विद्वान इतिहासकार **डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल** (जयपुर) का अभिनन्दन समारोह सम्पन्न हुआ जिसमें उनके अभिनन्दन ग्रन्थ का लोकार्पण किया गया।

१० नवम्बर को सत्याश्रम, बेरगांव (मेघे), वर्धा में **स्वामी सत्यभक्त** (पूर्वनाम पं० दरबारी लाल) का उनकी सौवीं जन्म-जयन्ति पर उनके प्रशंसकों ने अभिनन्दन किया। यह हर्ष की बात है कि 'जीवेम् शरदाशतम्' की अभिलाषा को उन्होंने पूरी जीवन्तता के साथ चरितार्थ किया है।

उ० प्र० हिन्दी संस्थान द्वारा प्रसिद्ध गांधीवादी चिन्तक और वरिष्ठ साहित्यकार ७६-वर्षीय **पद्मश्री यशपाल जैन** को वर्ष १९९८ का **साहित्य भूषण** सम्मान प्रदान किया गया।

UPTEC Talent Search Scholarship-98 की प्रतियोगितात्मक परीक्षा में लखनऊ से **मयंक जैन** और **पुनीत जैन** (दोनों कक्षा-११) तथा **कु० इडा जैन** (कक्षा-१२) सफल हुए।

कथालोक के सम्पादक **श्री हर्ष चन्द्र** का इन्टरनेशनल बायोग्राफिकल सेन्टर, केम्ब्रिज (इंग्लैण्ड), द्वारा **इन्टरनेशनल मैन ऑफ दि ईयर १९९७/९८** सम्मान हेतु चयन किया गया।

स्नातक महाविद्यालय, डिब्रूगढ़, की भू०पू० हिन्दी विभागाध्यक्ष विदूषी **श्रीमती चन्द्रमुखी जैन** द्वारा असमिया भाषा के पुरस्कृत उपन्यास **स्वर्णलता** के हिन्दी अनुवाद को प्रकाशित कर **नेशनल बुक ट्रस्ट**, नई दिल्ली, ने श्रीमती जैन के साहित्यक कृतित्व को अभिस्वीकृति दी।

श्री गुमान मल लोढ़ा, सेवानिवृत्त न्यायमूर्ति और भूतपूर्व सांसद, को भारतीय पशु कल्याण परिषद् का अध्यक्ष नियुक्त किया गया।

भारत के वनस्पति सर्वेक्षण के भूतपूर्व निदेशक, राष्ट्रीय वनस्पति अनुसन्धान संस्थान के Scientist Emeritus और लोकजैव विज्ञान संस्थान के मानद निदेशक, **डा० सुधांशु कुमार जैन** को Society for Economic Botany द्वारा Distinguished

Economic Botanist पुरस्कार के लिए चयनित किया गया। पुरस्कार १९९९ में अन्तर्राष्ट्रीय बोटेनिकल कांग्रेस में सेंट लुई (यू० एस० ए०) में प्रदान किया जाएगा। इस सम्मान को प्राप्त करने वाले वह पहले भारतीय ही नहीं वरन् एशियाई वनस्पति वैज्ञानिक हैं।

उपरोक्त सभी महानुभावों का उनकी उपलब्धि के लिए शोधादर्श परिवार हार्दिक अभिनन्दन करता है।

समाचार विविधा

भारतीय संस्कृति में जैन धर्म और प्रारम्भिक बौद्ध धर्म पर कान्फ्रेंस

प्रो० पद्मनाभ एस० जैनी के सम्मान में ४ जून से ८ जून, १९९८, को स्वीडन में लुण्ड विश्वविद्यालय में उपरोक्त विषय पर एक अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंस हुई जिसमें यूरोप, संयुक्त राज्य अमेरिका और जापान के विद्वानों ने भाग लिया। जैन धर्म पर २७ शोध-पत्र प्रस्तुत किये गये। भारतीय मूल के ६ विद्वान थे, ३ जापानी थे, ९ अमरीकी थे और ९ यूरोपीय थे। इससे यह विदित हुआ कि विकसित देशों के प्रबुद्धजनों में जैनधर्म के प्रति काफी जिज्ञासा है।

जैनधर्म और इकालॉजी पर कान्फ्रेंस

यह कान्फ्रेंस हारवर्ड विश्वविद्यालय, यू० एस० ए०, में १० जुलाई से १२ जुलाई को सम्पन्न हुई। इसमें अमेरिका के ५ विश्वविद्यालयों, ब्रिटेन के २ विश्वविद्यालयों तथा भारत के ३ विश्वविद्यालयों (नालन्दा, लाडनूं और नागपुर) के विद्वानों ने भाग लिया।

आचार्य विद्यासागर वाङ्मय संगोष्ठी

२७ से ३० सितम्बर को सीकर (राजस्थान) में मुनि श्री सुधासागर जी के सानिध्य में आचार्य श्री विद्यासागर महाराज के समग्र वाङ्मय पर एक चतुर्दिवसीय संगोष्ठी हुई जिसमें लगभग ११० जैन-अजैन विद्वानों ने भाग लिया। संगोष्ठी के संयोजक डा० रमेश चन्द्र जैन (बिजनौर) और डा० कपूर चन्द जैन (खतौली)

थे। इस अवसर पर लगभग १० पुस्तकों का विमोचन व वितरण हुआ तथा श्री सुरेश चन्द्र 'सरल' को सन्त चरित्र लिखने हेतु आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र, ब्यावर, द्वारा 'साहित्य कुमुदचन्द्र' अलंकरण से सम्मानित किया गया।

संगोष्ठी की विशेषता यह भी रही कि दिगम्बर जैन समाज के ४६ प्रतिष्ठित विद्वानों ने हस्ताक्षरित परिपत्र द्वारा अपनी आचार्य-भक्ति का प्रदर्शन अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की भर्त्सना करके किया। ऐसा लगता है कि अब दिगम्बर जैन समाज में विद्वान वही माना जाएगा जो आचार्यों-माताओं के मान-स्तम्भ को उत्तुंग करने में सहायक होगा और उनके क्रोध-मान-माया-लोभ के संवर्धन में साधक होगा। क्या उन परिपत्रों पर हस्ताक्षर देने वाले विद्वान लोग आत्म-निरीक्षण करने का कष्ट करेंगे ?

चतुर्थ जैन विज्ञान संगोष्ठी

२ से ४ अक्टूबर को बीना में चतुर्थ जैन विज्ञान विचार संगोष्ठी सम्पन्न हुई। मुनि श्री क्षमासागर जी के सानिध्य में उद्घाटन श्री कमल कान्त जैसवाल, आई०ए०एस०, ने किया और संयोजन प्राचार्य निहाल चन्द जैन ने किया। सात सत्रों में १४ विद्वानों द्वारा शोधपत्र प्रस्तुत किये गये।

भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन

४ से ६ अक्टूबर को जम्बूद्वीप-स्थल, हस्तिनापुर, में गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती जी के ससंघ सानिध्य में भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन ६ सत्रों में सम्पन्न हुआ जिसमें २० कुल-पति/प्रति-कुलपति तथा देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों के जैन विद्या विभागों, जैन चेयर्स एवं जैन साहित्य के पारम्परिक शैली के १०८ विद्वान सम्मिलित हुये। सम्मेलन सांसद श्री धनंजय कुमार जी (मंगलौर) की अध्यक्षता में ६ सत्रों में सम्पन्न हुआ तथा विभिन्न वक्ताओं ने भगवान ऋषभदेव की शिक्षाओं, वैदिक ग्रन्थों में उनके उल्लेखों, जैन धर्म का भारतीय संस्कृति पर प्रभाव, पर्यावरण-संरक्षण में जैन धर्म की भूमिका, और समाज व्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था

पर अपने विचार रखे। समापन सत्र को सम्बोधित करते हुये मगध वि०वि०, बोध गया, के प्रति-कुलपति प्रो० बलबीर सिंह ने कहा कि "इस सम्मेलन से हम लोगों की जैन धर्म के प्रति बहुत सारी भ्रांतियां दूर हुई हैं। अब मैं निश्चित रूप से राष्ट्रीय शिक्षा विभाग से सम्पर्क करके सरकारी पाठ्य पुस्तकों में निहित भ्रांतियों को दूर कराऊंगा।" पू० माताजी की प्रेरणा से कुरुक्षेत्र, मैसूर, आरा, मेरठ, इन्दौर, नागपुर, उदयपुर आदि विश्वविद्यालयों में ऋषभदेव समारोह आयोजित करने की घोषणा की गई।

तीर्थंकर ऋषभदेव राष्ट्रीय विद्वत् महासंघ

गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती जी की प्रेरणा से उनके जन्म-दिवस शरद पूर्णिमा को अतिरिक्त गरिमा प्रदान करने के उद्देश्य से भगवान ऋषभदेव की जन कल्याणकारी शिक्षाओं एवं उनकी परम्परा के भारतीय संस्कृति पर व्यापक प्रभाव के समीचीन अध्ययन तथा उसके व्यापक प्रचार-प्रसार हेतु एक "तीर्थंकर ऋषभदेव राष्ट्रीय विद्वत् महासंघ" की स्थापना की गई जिसमें जैन विद्याओं के अध्ययन/अनुसन्धान में लगे सभी जैनाजैन विद्वान सम्मिलित हो सकेंगे। प्रो० प्रेम सुमन जैन (उदयपुर) अध्यक्ष, डा० शेखरचन्द जैन (अहमदाबाद) कार्याध्यक्ष तथा डा० अनुपम जैन (इन्दौर) महामन्त्री, मनोनीत किये गए।

पं० जुगल किशोर मुख्तार : व्यक्तित्व एवं कृतित्व विद्वत् संगोष्ठी

स्व० पं० जुगल किशोर जी मुख्तार के व्यक्तित्व-कृतित्व पर एक विद्वत् संगोष्ठी का आयोजन उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज के सानिध्य में और डा० शीतल चन्द जैन (जयपुर) के संयोजन में ३० अक्टूबर से १ नवम्बर तक श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र देहरा, तिजारा, अलवर (राज०) में किया गया। इसमें अखिल भारतवर्षीय स्तर के साठ विद्वान सम्मिलित हुए। उद्घाटन डॉ० भागचन्द जैन 'भागेन्दु' ने किया। सात सत्रों में ४८ शोधपत्रों का वाचन किया गया। सत्रों की अध्यक्षता क्रमशः डॉ० रतन चन्द्र जैन (भोपाल), डॉ० प्रकाश चन्द जैन (दिल्ली), पं० निर्मल कुमार जैन

(सतना), डॉ० सुपार्श्वकुमार जैन (बड़ौत), पं० नीरज जैन (सतना) एवं डा० भागचन्द जैन 'भास्कर' (नागपुर) ने की। समापन सत्र में निर्णय लिया गया कि मुख्तार साहब के समग्र साहित्य का प्रकाशन पुनः किया जाये एवं मुख्तार साहब के स्मृति ग्रन्थ का प्रकाशन भी किया जाए।

लखनऊ जैन मिलन

२९ नवम्बर को डा० शशि कान्त व श्री रमा कान्त जैन के निवास पर लखनऊ जैन मिलन की बैठक सम्पन्न हुई। लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अ. प्रा. रीडर, हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान डा० ओम प्रकाश त्रिवेदी ने "मध्ययुगीन जैन कवियों का हिन्दी साहित्य को योगदान" विषय पर सारगर्भित वार्ता दी। श्री अजित प्रसाद जैन ने बताया कि कविवर बनारसीदास द्वारा रचित अर्धकथानक हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में ही नहीं अपितु अंग्रेजी में निबद्ध आत्मचरितों में भी सर्वप्रथम था। तदनन्तर श्री प्रकाश चन्द्र जैन 'दास', श्रीमती शारदा जैन, पं० कैलाश चन्द्र जैन 'पंचरत्न', श्री रोहित कुमार जैन और श्री लूण करण नाहर ने भजन प्रस्तुत किये। डा० महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त', डा० शशि कान्त और श्री रमा कान्त जैन ने कविता पाठ किया।

जैन मेला

लब्धि-राज-पद्मा जैन सेन्टर, चेन्नई, द्वारा २५ दिसम्बर, १९९८ से ३ जनवरी, १९९९ तक श्री जैन दादावाड़ी, ३७०, कोन्नूर हाई रोड, चेन्नई-६०००१२ में एक जैन फेयर (मेला) आयोजित किया जा रहा है। इसका उद्देश्य जैन सिद्धान्त, संस्कृति, संस्कार और आदर्श जीवन के मूल्यों को प्रचारित करना है। इसके प्रेरक श्वेताम्बर आचार्य श्रीमद् विजय राज यश सूरीश्वर जी हैं और आयोजक श्वेताम्बर जैन समाज है।

जैन मन्दिरों के परम्परागत स्वरूप को क्षति

Times of India में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार आर्कियालाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया के डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट, श्री

सैयद जमाल हसन, ने ललितपुर जिले में मदनपुर, सिरोन खुर्द, बानपुर व अन्य ग्रामों में ८वीं-९वीं शती (चन्देल युग) और बुन्देल युग के २० जैन मन्दिरों के अपना पुरातात्त्विक महत्त्व और परम्परागत प्राचीन स्वरूप खोते जाने पर चिन्ता व्यक्त की है। उन्होंने बताया कि संरक्षित क्षेत्र में स्थित मन्दिरों में १०० मीटर के क्षेत्र में किसी प्रकार का निर्माण Ancient Monuments and Archaeological Sites and Remains Act, 1958 का उल्लंघन है।

समाचार के अनुसार दिगम्बर अतिशय क्षेत्र कमेटी धर्म प्रचार के नाम से प्राचीन मूल ढाँचों को गिराकर उन्हें आधुनिक ढाँचों से प्रतिस्थापित करा रही है। ललितपुर में तैनात पुरातत्त्व अधिकारी ने बुन्देला युग की कतिपय तीर्थंकर मूर्तियों पर एनेमल (enamel) पेन्ट कराये जाने, उनकी पादपीठिकाओं को बदले जाने तथा संरक्षित क्षेत्र में बड़े फाटक, संग्रहालय, धर्मशाला आदि का निर्माण कराये जाने की भी सूचना दी है।

आचार्य श्री तुलसी पर डाक टिकट

आचार्य श्री तुलसी की स्मृति में उनके ८५वें जन्म दिवस पर भारत के उप राष्ट्रपति महामहिम श्री कृष्ण कान्त ने २० अक्टूबर को डाक टिकट का विमोचन किया।

स्व० पं० बनवारी लाल जैन

पं० बनवारी लाल जी (जन्म-मर्श्रा गांव, १९०४ ई०; निधन-दिल्ली, ५ नवम्बर, १९५८ ई०) बाल्यकाल से ही विलक्षण प्रतिभावान थे। लगभग २० वर्ष तक जैन संस्कृत कर्मशियल हायर सेकेन्डरी स्कूल दिल्ली में शिक्षक रहे। तदनन्तर 'नवभारत टाइम्स' में १५ वर्ष तक व्यापार सम्पादक रहे। सन् १९४४ से १९६५ तक 'वीर' पत्रिका का सम्पादन किया। ३२ वर्ष तक दिल्ली की पद्मावती पुरवाल दिगम्बर जैन पंचायत के मंत्री रहे और श्री पद्मावती पुरवाल दिगम्बर जैन मन्दिर तथा 'पद्मावती पुरवाल दिगम्बर जैन धर्मशाला' का निर्माण संपन्न कराया। वह दहेज प्रथा

उन्मूलन के पक्षधर रहे। अपने जीवनकाल में वह अनेकों जैन एवं जैनेतर संस्थाओं द्वारा सम्मानित किये गये; जैन मिलन इंटरनेशनल संस्था ने विशेष रूप से सम्मानित किया। ५ नवम्बर को उनकी ११वीं पुण्य तिथि पर दिल्ली में उनको विनयांजलि अर्पित की गई।

साहू जैन सेन्टर फॉर सिविल सर्विसेज

दिल्ली में प्रशासनिक सेवाओं के अध्ययन-अध्यापन के लिए साहू जैन सेन्टर फॉर सिविल सर्विसेज की स्थापना की गई है। इस संस्था का मुख्य लक्ष्य जैन समाज की शिक्षण संस्थाओं तथा विद्यार्थियों में देश की उच्च प्रशासनिक सेवाओं के प्रति दिलचस्पी बढ़ाना है। साथ ही अध्यापन की उच्च व्यवस्था के माध्यम से लोक सेवा आयोग द्वारा ली जाने वाली सिविल सर्विसेज परीक्षा के तीनों चरणों, अर्थात् Preliminary, Main तथा Viva-Voce के लिए विद्यार्थियों को तैयार करने की विशेष व्यवस्था की गई है। इस सेन्टर में प्रथम बैच जनवरी, १९९९ से प्रारम्भ होगा। प्रवेश के इच्छुक छात्र प्रिंसिपल, साहू जैन सेन्टर फॉर सिविल सर्विसेज, १०, दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२, से पत्र द्वारा सम्पर्क करें।

शोध ग्रन्थों का क्रय

श्री दिगम्बर जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, ६६ मनिहारों का रास्ता, जयपुर-३ (राज०) जैन साहित्य एवं संस्कृति, जैन दर्शन, जैन धर्म एवं जैन कवियों, आचार्यों पर प्रकाशित शोध ग्रन्थों, जिस पर पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की गयी हो, खरीदना चाहता है। प्रकाशक, अनुसंधानकर्ता एवं पुस्तक विक्रेता उचित कमीशन के आधार पर अपने पास उपलब्ध प्रकाशित शोध ग्रन्थों की सूची उक्त महाविद्यालय के प्राचार्य को भेज सकते हैं।

निश्शुल्क उपलब्ध

श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, ५८०, जुनी माणेक वाडी, भावनगर-३६४००१, से आध्यात्मिक मासिका पत्रिका **स्वानुभूतिप्रकाश** निश्शुल्क प्राप्त की जा सकती है।

शोक संवेदन

१९ अगस्त, १९९८, को सहारनपुर में भारतीय जैन मिलन के मार्गदर्शक मण्डल के वरिष्ठ सदस्य एवं भारतीय जैन मिलन के वरिष्ठ उपाध्यक्ष श्री राजेन्द्र कुमार जैन के कनिष्ठ भ्राता श्री जितेन्द्र कुमार जैन (गैस वाले) का निधन हो गया।

६ सितम्बर को आचार्य श्री वर्धमानसागर महाराज की संघस्थ आर्यिका समतामती माता जी का समाधिमरणपूर्वक देवलोक-वास हो गया।

१० सितम्बर को सआदतगंज, लखनऊ के ८०-वर्षीय समाज-सेवी सुश्रावक श्री टीकम चंद जैन गंगवाल का निधन हो गया।

फिरोजाबाद निवासी समाजसेवी, स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी, साहित्यकार, वैद्य श्री पन्नालाल जैन 'सरल' भी सितम्बर में ही हमारे बीच नहीं रहे।

२ अक्टूबर को लखनऊ के लब्ध-प्रतिष्ठ निर्लोभी चिकित्सक ७३-वर्षीय डा० सुमत बिहारी लाल जैन का दिल्ली में निधन हो गया।

५ अक्टूबर को जैन विद्यालय चौक, लखनऊ, के प्रबंधक तथा अनेक स्थानीय जैन एवं जैनेतर सामाजिक संस्थाओं से जुड़े ५३-वर्षीय बैट्री व्यवसायी श्री सुभाष चन्द्र जैन का हृदयाघात से आकस्मिक निधन हो गया।

४ नवम्बर को जयपुर में ७८-वर्षीय सुप्रसिद्ध विद्वान इतिहास-कार डा० कस्तूर चन्द कासलीवाल का निधन हो गया।

२५ नवम्बर को सिहोरा (जबलपुर) में धर्मशीला श्रीमती नन्दी देवी सिंघई का स्वर्गवास हो गया। उनकी स्मृति में उनके पति श्री कालू राम सिंघई ने निर्धन विद्यार्थियों की सहायता के लिये एक लाख रुपये के ट्रस्ट की घोषणा की है।

उपरोक्त सभी महानुभावों के प्रति **शोधादर्श** परिवार अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है और शोक संतप्त परिजनों के प्रति अपनी हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

आभार

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के शिया थियोलॉजी विभाग के अध्यक्ष प्रो० डा० सैयद इतिज़ा हुसैन ने **शोधादर्श** को रु० १००/- भेंट किये हैं।

जसवन्तनगर निवासी स्व० सेठ सुदर्शन लाल जैन के पौत्र एवं स्व० नरेन्द्र भूषण जैन के सुपुत्र **चि० रंजन जैन** तथा महमूदाबाद निवासी श्री सुमत कुमार जैन की सुपुत्री स्वस्तिमती **शैल जैन** के दि० ९-११-१९९८ को लखनऊ में सम्पन्न शुभ विवाह पर उभय पक्ष की ओर से निकाले गये दान में से श्री अनुराग जैन (इन्दिरा नगर, लखनऊ) ने **शोधादर्श** को रु० ५१/- भेंट किये हैं।

मिसीसौगा (कनाडा) से प्रकाशित Jinamanjari के अप्रैल १९९८ के अंक में **शोधादर्श**-३२ से श्री गुलाब चन्द्र जैन के लेख 'ग्यारसपुर के दिगम्बर जैन मन्दिर' को अंग्रेजी में अनूदित कर प्रकाशित किया गया है। नोएडा से प्रकाशित साप्ताहिक **रत्नराज** (२५-३१ अक्टूबर, १९९८) में श्री गुलाब चन्द्र जैन का लेख "जैन संस्कृति : भारतीय डाक टिकटों पर" **शोधादर्श**-३५ से साभार प्रकाशित हुआ है। **शोधादर्श** को यह बहुमान देने के लिए हम Jinamanjari के सम्पादक डा० एस० ए० भुवेन्द्र कुमार और **रत्नराज** के सम्पादक श्री राजेन्द्र नगावत के प्रति आभारी हैं।

पाठकों की दृष्टि में

शोधादर्श नाम से, उसके बिस्तृत अर्थ पर ध्यान न देते हुए मैं समझता था कि इसमें प्रकाशनों की आलोचना प्रत्यालोचना प्रकाशित होती होगी। प्रस्तुत अंक (३५) को पढ़ कर मुझे पत्रिका और उसके सम्पादकों पर बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हुई। मैं अनेक सामाजिक पत्रिकाओं को देखता हूं। अनेक पत्रों का सम्पादक भी रहा हूं। परन्तु **शोधादर्श** के आलेख, जो अनुभवी लेखकों द्वारा लिखे गये हैं, तथा 'समाचार विमर्श' आदि जिन्हें सम्पादक जी ने अपनी लेखनी

से उनका परिमार्जन कर **समीक्षा** एवं सुझाव के साथ प्रकाशित कराया है, एक सकारात्मक शैली में माधुर्य एवं स्पष्टवादिता के साथ निर्भीकता, यथार्थता, गम्भीरता और सामाजिक अनुभव का प्रदर्शन करते हैं जो अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता। इस पत्रिका की सामग्री को देखकर मुझे श्री जुगल किशोर जी मुख्तार, श्री नाथूराम जी प्रमी एवं सिद्धांताचार्य पं० कैलाश चन्द जी शास्त्री का स्मरण हो रहा है। उनकी लेखनी के समान ही श्री अजित प्रसाद जी जैन प्रधान सम्पादक और उनके सहयोगी श्री डा० शशि कान्त एवं श्री रमा कान्त जैन की लेखनी से मैं प्रभावित हूं। मैं जान रहा हूं कि आपकी कोई संकीर्णता की दृष्टि नहीं है। आपके लेखक भी राष्ट्रीय, सामाजिक, सामयिक एवं ऐतिहासिक क्षेत्र के निवृत्त जीवन यापन करने वाले हैं। उनके अनुभव का पाठकों को लाभ मिल रहा है यह सन्तोष का विषय है।

—पं० नाथूलाल जैन शास्त्री, इन्दौर

वर्तमान समाज को सही दिशा-दर्शन का कार्य कर रही है **शोधादर्श** पत्रिका। इसमें सम्पादक की कलम कुरीतियों एवं असत् मान्यताओं पर बराबर प्रहार करती है। यह निश्चित है कि इसमें प्रकाशित समीक्षाएं यथार्थ से जुड़ी हुई होती हैं। हाँ जब भी जो बात जिसके विरुद्ध लिखी जाती है, उसे पढ़कर वह तिलमिला जरूर जाता होगा, किन्तु वह गम्भीरता से विचार करे तो उसे अपने अन्दर उत्पन्न बुराई निकालने का अवसर ही मिलेगा। मैं तो यथार्थ कहने वाले को अनन्त साधुवाद देता हूं। सम्पादक एवं प्रबन्धक महोदय से यही अपेक्षा करता हूं कि सतत इसके द्वारा इसी प्रकार के लेखन से त्यागी वर्ग, विद्वत्वर्ग और गृहस्थ जनों को उनकी भूलों को बताते रहें, जिससे उन्हें अपनी भूलों को सुधारने का अवसर मिले। ज्ञानार्णव में आचार्य शुभचन्द्र ने भूलों को बतलाने वाले को सबसे बड़ा हितैषी कहा है। अतः मैं आपको सभी का हितैषी ही मानता हूं।

—डॉ० श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत

...शोधादर्श के माध्यम से आप जो दे रहे हैं, वह अद्भुत है। बधाई।

—डा० नेमीचन्द, संपादक, तीर्थंकर, इन्दौर

आप इतने से "गागर में सागर" भर देते हैं यह विशेष दृष्टव्य है। राष्ट्र का वर्तमान परिदृश्य, साहित्य की पठनीयता, काव्य, संस्मरण और जैन जगत की दिवंगत विभूतियों पर आप इतनी श्रेष्ठ सामग्री दे रहे हैं कि यह अंक संग्रहणीय बन गया है—मैंने पूर्व के सभी अंक संजोकर रखे हैं। दो आलेखों पर चर्चा करना चाहूंगा, उससे आपके पाठक वृन्द का भी ज्ञानार्जन होगा। पहला है—"जैन संस्कृति : भारतीय डाक टिकटों पर" ले० श्री गुलाब चन्द्र जैन। अनेक अज्ञात सूचनाओं को देने वाला शोधपूर्ण लेख है। कभी-कभी देशों में होड़ मचती है कि वह सर्वप्रथम डाक टिकट छापें व गौरव प्राप्त करें। वर्ष १९६०-६५ के समय में रूस की सरकार ने कालिदास पर डाक टिकट छापने की पहल की और कालिदास समारोह के आयोजन कर्ताओं से निवेदन किया कि कवि कालिदास का एक चित्र भेज दें पर वह प्रामाणिक होना चाहिए। समारोह समिति कालिदास के काल्पनिक चित्र को भेजना उचित नहीं समझती थी क्योंकि पूरे देश का सवाल था। हार कर एक सेक्रेटरी साहब ने फिल्मों के अभिनेता भारत भूषण जो 'महाकवि कालिदास' में कालिदास बने थे, का एक फोटोग्राफ रूस भेज दिया। रूस ने बड़े सम्मान से उस चित्र को डाक टिकट पर यह छाप कर अपने को सराहा कि विश्व में प्रथम बार व सर्वप्रथम रूस ने कवि सम्राट कालिदास का डाक टिकट प्रसारित किया।

दूसरा आलेख जैन शास्त्रों के गहन अध्येता स्वर्गीय सत्यंधर कुमार सेठी (पृ० २०२) पर है। मेरा उनका परिचय सन् १९६० से था जबकि वे मध्य भारत में दिगम्बर जैन पुरातत्त्व संग्रहालय जयसिंहपुरा के संग्रहकर्ता के रूप में विख्यात हो चुके थे। उन्हें 'वाणी भूषण' की उपाधि से विभूषित किया गया था। मालवा के जैन पुरातत्त्व को उन्होंने नवीन आयाम प्रदान किया और बदनावर, देवास,

आष्टा गोदलमऊ और सुन्दरसी पचोर व जामनेर की जैन मूर्तियों को एकत्रित करवा उन्हें संरक्षित किया। उनके आग्रह पर मैंने १९७२ से जैन संग्रहालय, जयसिंहपुरा, का संग्रहाध्यक्ष का मानसेवी पद संभाला जो आज तक पूर्ण कर रहा हूं। उज्जैन में यह एक ऐसा महत्वपूर्ण संग्रहालय है जो अपनी सानी में खजुराहो के जैन संग्रहालय की भांति समृद्ध और सम्पन्न है। इसमें ८५० ऐसी दुर्लभ जैन तीर्थंकर प्रतिमाएं सुरक्षित हैं जो मूर्तिकला का श्रेष्ठ प्राचीन वैभव प्रकट करती हैं। ६५ मूर्तियों पर पादपीठ शिलालेख हैं। उनके कलात्मक शिल्प व अभिलेखों पर मैंने पं० सत्यंधर जी सेठी के प्रधान सम्पादकत्व में एक पुस्तक भी लिखी है—**दिगम्बर जैन मूर्ति संग्रहालय जयसिंहपुरा—एक परिचय** जिसे संग्रहालय के प्रत्येक दर्शक को निःशुल्क वितरित किया जाता है। सेठी जी ने उज्जैन के पुरातत्त्व व जैन विद्या को बहुत अवदान दिया है।

—डॉ० सुरेन्द्र कुमार आर्य, उज्जैन

सम्पादकीय में श्री अजित प्रसाद जैन ने ठीक ही लिखा है कि वर्तमान युग में न कोई राजा है और न प्रजा। समस्त प्रचलित मान्यतायें भग्न होती जा रही हैं। यह भी पूर्णतया सत्य है कि वीतरागी भगवान के समवशरण की पूजा में रजत श्रीफल तथा रत्नों का कोई औचित्य नहीं है। इस बार के **शोधादर्श** में सारस्वत समारोह की प्रमुखता है। सम्मानित विभूतियों की चित्रावली तथा उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का दर्पण है यह अंक। मूर्तियों की तस्करी तथा उनका विखण्डन एक भयावह स्थिति है। स्वतन्त्र भारत में ऐसा कुकृत्य एक घृणित अपराध है, परन्तु यहाँ अपराधों के लिये खुली छूट है। श्री अजित प्रसाद जैन का **शोधादर्श** के सम्पादन में श्लाघनीय योगदान है।

—डा० परमानन्द जड़िया, लखनऊ

सारस्वत सम्मान समारोह का विवरण पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। यह एक अनवरत कार्यक्रम है जो १९७९ से बराबर चल रहा रहा है। इसमें अष्टासीति वय ज्येष्ठ विद्वान मनीषियों को सम्मानित

करना, उनका अभिनन्दन करना, यह भारतीय संस्कृति के उच्च आदर्शों की अभिव्यक्ति है। हम समाज पर उनके उपकारों के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं और इस प्रकार मनीषी विद्वानों की परम्परा हमारा दिग्दर्शन करती चलती है। डॉ० ज्योति प्रसाद जैन महान् मनस्वी विद्वान थे।

–डॉ० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, आगरा

गुरुगुण-कीर्तन के अन्तर्गत अकलंक देव सम्बन्धी जानकारी कई नवीनता लिये है। उनकी वास्तविकता संक्षिप्त में अच्छे ढ़ंग से बताई गई है। सम्पादकीय में श्री ज्ञानमती माता के बनाए पौराणिक दर्शन को जैन दर्शन सिद्धान्त से तौलना, व अहिंसा दिवस को 'श्रम दिवस' के रूप में मनाये जाने की मांग, बुद्धिमत्तापूर्ण है। हीरे-जवाहरात की वृष्टि वैभव प्रदर्शन का 'अहं' रूप है जो घातक है, ऐसा मेरा मत है। इस Pomp & Show का मेल भक्ति में निरर्थक ही कहा जायेगा। वह सादगी और सरलता का रूप है।

सारस्वत सम्मान समारोह के प्रतिवेदन से कई महानुभावों के कार्य-कलापों का संकेतात्मक ज्ञान हुआ। फिर उनका परिचय भी साथ में दे देना वास्तव में दूरदर्शिता का प्रमाण है। यह बहुत आवश्यक था। डा० ज्योति प्रसाद जैन की कुछ छोटे लेखों द्वारा जानकारी देना व काव्य संध्या का संक्षिप्त आकलन करना भी सूझ-बूझ का नमूना है। 'समाज भय मुक्त क्यों नहीं' में आधुनिक युग की सच्ची कलई खोल कर समाज को भय मुक्त करने की जो मांग की गई है वह ध्यान देने योग्य है। पुलिस व राजस्व विभाग (मैं रेवेन्यू आफिसर रहा हूं) दो ऐसे विभाग हैं जिनका सम्बन्ध सभी विभागों व जनता से आता है और इनमें ही बड़ा कीचड़ भरा है, तिस पर यदि नेताओं का वरद हस्त और हुआ तो समझिए लुटिया डूबते-उतराते जाने कितने हिचकोले खायेगी, राम जाने। व्यक्ति और समाज को संभालने का इन पर अधिक उत्तरदायित्व आ जाता है।

श्रुत-पंचमी और पुस्तकालय-स्थापना दिवस का प्रतिवेदन भी नये आदमी के जानने के लिये सामग्री छोड़ता है। इसी तरह 'जैन

संस्कृति : भारतीय डाक टिकटों पर' लेख ज्ञानवृद्धि का अच्छा साधन है। ज्वलन्त समस्या पर्यावरण पर भी ध्यान जाना अच्छा है। 'साहित्य सत्कार' के अन्दर पुस्तकों की समीक्षा संक्षिप्त होकर सारगर्भित है। ब्र० पंडिता विदुषी रत्न श्रद्धेया चन्दाबाई का परिचय प्रथम बार मिला। 'जैन महिलादर्श' पत्रिका में मेरे लेख और कविताएं भी छपी हैं, परन्तु चन्दाबई के बारे में विशेष कुछ जानने को नहीं मिला। इसी पत्रिका में आपने तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०, का प्रगति प्रतिवेदन भी दिया है व अन्य फुटकर समाचार भी है। ये सब वार्षिक गतिविधियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हैं। इस नाते से जुलाई ९८ का अंक **शोधादर्श** से सम्बन्धित सभी केन्द्रीय गतिविधियों को जानने का एक साधन बन गया है। इतनी सारी सामग्री को समेट कर विधिवत संकलन करना वास्तव में परिश्रम, लगन और दूरन्देशी का उदाहरण है। इस हेतु बधाई स्वीकार करें।

–श्री मदन मोहन वर्मा, ग्वालियर

आपका प्रयास सराहनीय है। सामान्य ज्ञान की जानकारी व्यवहार धर्म में आवश्यक है। पत्रिका को देख कर ऐसा लगा कि पत्रिका शीर्षक 'खोजादर्श' होना चाहिए था।

–श्री धन्य कुमार जैन, सिहोरा (जि० अचलपुर)

आप निराकुलता से सामायिक विषयों पर इस पत्र के माध्यम से चर्चा करने से सराहनीय कार्य कर रहे हैं। इस हेतु आपको साधुवाद है।

–श्री आनन्द प्रकाश जैन, हस्तिनापुर

शोधादर्श में प्रबुद्ध और मननीय लेख पढ़े और अनेक सारस्वत अनुष्ठानों का विवरण पढ़ कर चित्त अत्यन्त आनन्दित है।

–डा० शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी, वाराणसी

पहले के अंकों की भांति यह अंक भी अत्यन्त उपयोगी सामग्री संजोए हुए है। डा० ज्योति प्रसाद जैन के कृतित्व ने उन्हें अमरत्व प्रदान किया है। आप उनके उद्देश्यों को जिस लगन के साथ आगे बढ़ा रहे हैं वह सराहनीय है।

–प्रो० डा० देवेन्द्र हाण्डा, चण्डीगढ़

शोधादर्श जैन विद्या से सम्बद्ध नवीनतम शोध आलेखों तथा अन्य शोध प्रवृतियों की दृष्टि से आदर्श शोध पत्रिका का रूप सहज ही पा रही है। पत्रिका नई शोध दिशाओं के लिये आवश्यक स्रोत सामग्री तथा दृष्टि बोध उपलब्ध करवाने में अपनी सार्थक भूमिका का निर्वाह करने के साथ ही समाज कार्य में भी प्रेरणादायी सिद्ध हो रही है। अंक ३५ में आपने सारस्वत साधकों का परिचय तथा समारोह की सुविस्तृत रपट देकर वैदुष्य और समाज कार्यों के प्रति अपनी उत्कट आस्था तथा सम्मान भाव प्रकट किया है, यह देखकर अत्यन्त प्रसन्न एवं आश्वस्त हुआ। अन्य लेख, टिप्पणियाँ, पुस्तक समीक्षा आदि सहित सभी स्थायी स्तम्भ पूर्व अंकों की भांति पठनीय और ज्ञानवर्द्धक हैं।

—डॉ० शैलेन्द्र कुमार शर्मा, उज्जैन

पूर्ववत् पठनीय ज्ञानवर्धक शोध सामग्री से परिपूरित **शोधादर्श** का ३५वां अंक प्राप्त हुआ। एतदर्थ आभारी हुआ। **शोधादर्श** के प्रथम पृष्ठ पर 'प्रमाणमकलङ्कस्य इत्यादि पद्य छपा है। मेरी दृष्टि से इसका उत्तरार्ध इस प्रकार होना चाहिए—'धनञ्जयकवेः काव्यं रत्नत्रयमपश्चिमम्।' [पाठ-शोधन के लिए हम आभारी हैं। भूल-सुधार गत पृ० २५१ पर दृष्टव्य है।—सं०]

—पं० अमृत लाल शास्त्री, वाराणसी

इसके प्रत्येक अंक में निश्चय ही ज्ञानवर्द्धक सामग्री रहती है। 'सारस्वत सम्मान समारोह' लेख से विद्वानों के विषय में जानकर प्रसन्नता हुई।

—श्रीमती राजदुलारी जैन, कानपुर

'सारस्वत सम्मान समारोह' की रिपोर्ट पढ़ी। "समाज भय-मुक्त क्यों नहीं" में श्री जौहरीमल जैन ने समाज का सच्चा दिग्दर्शन किया है। 'भारत में पशुवध सरकारी संरक्षण में' श्री कैलाश भूषण जिन्दल का मार्मिक एवं प्रभावोत्पादक लेख पढ़ा।

—श्री किरण कुमार जैन, सारणी (म० प्र०)

शोधादर्श-३५ बहुत सुन्दर व ज्ञानवर्द्धक है। विशेष रूप से

श्री गुलाब चन्द्र जैन का डाक टिकटों पर जैन संस्कृति सम्बन्धी आलेख तथा श्री ज्ञान चन्द जैन का राष्ट्र के वर्तमान परिदृश्य की चिन्ता-जनक स्थिति का चित्रांकन। इस (दूसरे) आलेख को दो-तीन बार पढ़ गया हूं।

–श्री शुक्ल चन्द्र जैन, नई दिल्ली

समग्र अंक मननीय है। लेख विचारों की दिशा सत्य करने वाले रहते हैं।

–डा० पी० जी० मिश्रीकोटकर, नागपुर

शोध का यह आदर्श है कि उसमें नयी-नयी खोजपूर्ण सामग्री का संचयन हो। **शोधादर्श** में इसका निर्वाह होता है। अंक ३५ में 'जैन संस्कृति : भारतीय डाक टिकटों पर' ऐसा ही एक आलेख है। सामयिक सन्दर्भों का भी निर्वहन अच्छे ढंग से होता है, जैसे कि आलेख—'भारत में पशु वध : सरकारी संरक्षण में'। समाचारों के सन्दर्भ में उल्लेखनीय तथ्य यह है कि आप इसके साथ अपनी टिप्पणी भी जोड़ते हैं। इससे जागरूकता रेखांकित होती है।

–श्री राजेन्द्र नगावत, सं० **रत्नराज** व **तपोधन**, इन्दौर

रथ प्रवर्तन के बारे में बहुत अच्छा लिखा है। अब समाज की यह सिर्फ लूट है। अम्मा के भक्त मूढ़ धनिक हैं। अम्मा के निर्देश से आज ४० स्थानों पर नव निर्माण कार्य चल रहा है। हमारे राष्ट्र नेता, धर्म नेता, राष्ट्र और धर्म को बरबाद कर रहे हैं। केवली की भविष्यवाणी है, पंचम काल के अन्त तक यह धर्म टिकेगा। परन्तु आज के चतुर्विध धर्म संघ के ऊपर दृष्टिक्षेप करने पर लगता है, जैन धर्म कभी से समाप्त हो चुका। आज जो दिखता है वह धर्म का कलेवर है। आज जैन समाज की पहचान सिर्फ धन से है, न ज्ञान से, न शक्ति से, न कोई समाज हित के कार्य से। अम्मा कहती है, राजा को साधु की तपस्या के पुण्य का छठा भाग प्राप्त होता है। किन्तु उनका कोई पुण्य हो तो !

–श्रीमती वासन्ती शहा, सम्पादिका, **ज्ञानशलाका**, पुणे

शोधादर्श अंक पढ़ा, बहुत ही सुन्दर लगा। आप लोगों ने सरस्वती पुत्रों एवं सत्यनिष्ठ, उच्च आसीन् महानुभावों का अभिनन्दन

कर, लेखकों, कवियों एवं साहित्य प्रेमियों का सम्मान कर भारतीय परम्परा को जीवन्त किया है। आदरणीय जौहरीमल जी जैन एवं ज्ञान चन्द जी जैन ने अपने जीवन के अनुभवों का निचोड़ बहुत ही सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है—बधाई के पात्र हैं। डा० ज्योति प्रसाद जी जैन के बारे में जान कर श्रद्धा से हृदय नत-मस्तक हो गया है। आदरणीय अजित प्रसाद जी जैन की भावाभिव्यक्ति हृदय को झकझोर देती है। डा० शशि कान्त जी एवं श्री रमा कान्त जी जैन के प्रयास एवं काव्य एवं 'गुरुगुण-कीर्तन' बहुत ही सुन्दर एवं सम्पूर्णता लिए हुए सत्य अनुभूति लगी जिसके लिए श्री रमा कान्त जी बधाई के पात्र हैं। कुल मिलाकर **शोधादर्श**-३५ सत्यनिष्ठ अनुभूतियों का दस्तावेज लगा।

—श्री प्रकाश पालावत, सं०, **सम्यक् विकास,** अहमदाबाद

हर अंक की भांति विशिष्ट शोध सामग्री से समन्वित इस अंक में सारस्वत सम्मान समारोह की रिपोर्ट से ज्ञात कर प्रसन्नता हुई कि विद्वानों के प्रति सम्मान भाव आज भी इस प्रकार की श्रेष्ठ संस्थाओं का बना हुआ है। सम्पादकीय में समवशरण रथ विहार के सन्दर्भ में सम्पादक जी द्वारा दिये गये सुझावों के पालन की कल्पना क्या कर सकते हैं? श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन का आलेख—"पिच्छि की मर्यादा का अवमूल्यन न हो" अच्छा लगा। सम्मानित सारस्वत विद्वानों का परिचय महत्वपूर्ण भूमिका रखता है।

—ब्र० संदीप जैन 'सरल', बीना

इस अंक का तो तात्त्विक शोध (फण्डामेण्टल रिसर्च) की दृष्टि से सातिशय महत्त्व है। इसमें समाकलित शोधालेखों का विशिष्ट मूल्य तो है ही, 'तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति' द्वारा आत्म-परीक्षण के तौर पर प्रस्तुत कार्य-विवरणी का भी ततोऽधिक महत्त्व है।

—डा० श्रीरंजन सूरिदेव, पटना

शोधादर्श में आप शोध-परक लेख, समाचार प्रकाशित करते हैं, नवीन शोध सामग्री प्रस्तुत करते हैं, यह आल्हादकर है। शशि

कान्त जी आप सब का परिश्रम प्रशंसनीय है। प्रस्तुत अंक में पूज्या चन्दाबाई जी, स्व० डा० ज्योति प्रसाद जी जैन तथा अन्य विद्वानों व नये जैन प्रकाशनों पर अच्छी सामग्री दी गई है। श्री गुलाब चन्द्र जैन का लेख "जैन संस्कृति : भारतीय डाक टिकटों पर" ज्ञानवर्द्धक है। "राष्ट्र का वर्तमान परिदृश्य चिन्ताजनक" तथा "समाज भय-मुक्त क्यों नहीं" भी अच्छे लेख हैं।

–श्री सतीश कुमार जैन, नई दिल्ली

शोधादर्श निश्चय ही शोधाश्रित पत्रिका है। इसके विद्वत्ता-पूर्ण निष्पक्ष, निर्भीक और सटीक सम्पादकीय एवं समीक्षाएं हृदय को आन्दोलित करते हैं तथा मुनियों, विद्वज्जनों और श्रावकों को सोचने-विचारने और समीचीन निर्णय करने की प्रेरणा देते हैं। इसमें छपने वाले आलेख भी विद्वत्तापूर्ण एवं सप्रमाण होते हैं, जिनसे दुर्लभ जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। इतनी अच्छी पत्रिका समाज को देने के लिए आप कोटिशः साधुवाद के पात्र हैं।

–डॉ० रतनचन्द्र जैन, भोपाल

शोधादर्श आद्योपान्त पढ़ा। लेखों की जीदारी-सटीकता-स्पष्ट वादिता अनुपम है। शिथिलाचार-विकृतियों पर कड़ा प्रहार होते हुए भी क्या कोई त्यागी सुधरेगा ?

–श्री महावीर प्रसाद जैन 'सर्राफ', दिल्ली

शोधादर्श नियमित तथा अच्छे स्तर का वाङ्मय, लेख, समीक्षा आदि सह प्रकाशित होता है, यह समाधान हमेशा होने से अंक के लिए उत्सुकता सदैव रहती है।

–प्रा०क०घ० मिश्रीकोटकर, चांदूर बाजार (जि० अमरावती)

शोधादर्श-३५ मिला और आद्योपांत पढ़ा। पृष्ठ १११ के प्रथम पैरे में सुझाव कि शाकाहार का पालन करने वाले सुश्रावक इन्द्रादि बनें, स्तुत्य है। सभी पंचकल्याणक कराने वालों को ऐसा आभास दिया जाना चाहिए। पृष्ठ १२७ पर आपका विचार कि राजनीति अब व्यवसाय बन गई है, प्रत्येक दृष्टि से उचित है। हमें आने वाली पीढ़ी को धर्म की और उन्मुख करने हेतु प्रचार-प्रसार

से वातावरण तैयार करना चाहिए। अभिनन्दनीय व्यक्तित्वों का परिचय प्रोत्साहन के लिए शुभ-सूचक है।

—श्री सुन्दर सिंह जैन, सह सम्पादक, **'वीर'**, दिल्ली

उपयोगी एवं ज्ञानवर्द्धक विद्वत्तापूर्ण आलेखों से सम्बन्धित प्रस्तुत अंक निश्चय ही आपके सार्थक सम्पादकत्व श्रम का परिचायक है। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ एवं ज्योति प्रसाद जैन ट्रस्ट के संयुक्त तत्त्वावधान में ११ वर्षों बाद फिर से सारस्वत सम्मान का आयोजन आरम्भ करने हेतु आप सभी हार्दिक बधाई के पात्र हैं। विद्वत् अग्रजों का सत्कार, मान-सम्मान करना तो वास्तव में माँ शारदा का पूजन ही है। इस शुभ आयोजन के लिए साधुवाद!

—श्री वेद प्रकाश गर्ग, मुजफ्फर नगर

प्रसिद्ध इतिहासविद् डॉ० ज्योति प्रसाद जैन की दसवीं पुण्य तिथि पर आयोजित सारस्वत सम्मान समारोह की उपलब्धियाँ जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ। अनन्त-ज्योति विद्यापीठ और डॉ० ज्योति प्रसाद जैन ट्रस्ट द्वारा सम्पादित समस्त कार्य-कलाप अत्यन्त सराहनीय तथा प्रेरणास्पद हैं। विशेष उल्लेखनीय अष्टासीति वय ज्येष्ठ विद्वान मनीषियों का समारोहपूर्वक अभिनन्दन किया जाना है। उक्त आयोजनों को सफलतापूर्वक मूर्तरूप देने के लिये आप सब बधाई के पात्र है।

—डा० सन्तोष कुमार वाजपेयी, सागर

शोधादर्श (जुलाई १९९८) में विभिन्न आलेख पढ़कर मन आनन्दित हुआ। इसी प्रकार पठनीय सामग्री देते रहें।

—डा० अजय कोठारी, चेन्नई

——

इस अंक के लेखक

श्री अजित प्रसाद जैन : पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ-२२६००४

जस्टिस एम० एल० जैन : २१५, मंदाकिनी एन्क्लेव, अलकनन्दा, नई दिल्ली-११००१९

डा० ज्योति प्रसाद जैन (स्व०) : विश्व-विश्रुत विद्वान

श्री धन्य कुमार जैन : पूर्व विधायक; सिहोरा रोड (जि० अचलपुर)-४७७४३३

कु० नोलम जैन : शोध छात्रा; २५३/६२-ए, नादान महल रोड, लखनऊ-२२६००३

श्री प्रकाश चन्द्र जैन 'दास' : १२-सी. डी., आदर्श नगर, आलमबाग, लखनऊ-२२६००५

श्री प्रणव देव : प्रवक्ता, इतिहास विभाग, श्री पार्श्वनाथ उम्मेद (स्नातकोत्तर) महाविद्यालय, फालना (जि० पाली)-३०६११६

डा० भागचन्द्र जैन 'भास्कर' : न्यू एक्सटेंशन एरिया, सदर, गांधी चौक, नागपुर-४४०००१

श्री रमा कान्त जैन : ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४

डा० (श्रीमती) राका जैन : ५/७७९, विराम खण्ड-५, गोमती नगर, लखनऊ-२२६०१०

डा० सुधांशु कुमार जैन : ए-२६, माल एवेन्यू कालोनी, लखनऊ-२२६००१

डा० (सौ०) हेमलता जोहरापुरकर : बस स्टैण्ड के पास, काटोल (जि० नागपुर)-४४१३०२

डा० शशि कान्त : ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ-२२६००४

अनुक्रमणिका

[अंक १ से २५ में प्रकाशित विविध सामग्री की अनुक्रमणिका शोधादर्श-२५ में पृ० १०१-२४ पर, अंक २६ से ३० की अनुक्रमणिका शोधादर्श-३० में पृ० ३३३-४१ पर, और अंक ३१ से ३३ की अनुक्रमणिका शोधादर्श-३३ में पृ० ३०२-०६ पर प्रकाशित है। उसी के अनुक्रम में १९९८ में प्रकाशित अंक ३४ से ३६ की अनुक्रमणिका नीचे दी जा रही है। पृष्ठ सं० कोष्ठक में है।]

लेखक-लेख अनुक्रमणिका

लेखक	लेख	अंक
डा० अमर पाल सिंह	221. अध्यक्षीय सम्बोधन	35 (137)
श्री अजित प्रसाद जैन	222. संस्मरण—श्रद्धांजलि	35 (124-26)
	223. पिच्छि की मर्यादा का अवमूल्यन	(160-61)
श्री कैलाश भूषण जिन्दल	224. भारत में पशु-वध : सरकारी संरक्षण में	35 (156-58)
श्री गजेन्द्र नाथ चतुर्वेदी	225 साहित्य की पठनीयता	35 (141-42)
श्री गुलाब चन्द्र जैन	226. जैन संस्कृति : भारतीय डाक टिकटों पर	35 (152-55, 159)
श्री जोहरीमल जैन	227. समाज भय मुक्त क्यों नहीं	35 (132-36)
डा० ज्योति प्रसाद जैन	228. Essence of Jainism	34 (10-14)
	229. सारस्वत सम्मान : क्यों और कैसे	35 (114)
	230 देवी-देवताओं की पूजा-उपासना	36 (253-58)
श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन	231. पिच्छि की मर्यादा का अवमूल्यन न हो	35 (159-60)
कु० नीलम जैन	232. व्यास कृत हरिवंश पुराण एवं जिनसेन कृत हरिवंशपुराण के आलोक में श्री कृष्ण चरित	36 (272-78)
श्री प्रणव देव	233. "वीर विनोद" में वर्णित जैन धर्म	36 (269-71)
डा० भागचन्द्र जैन 'भास्कर'	234. जीवन की निष्कपटता ही ऋजुता है	36 (265-68)
डा० महेन्द्र सागर प्रचंडिया	235. जैन वाङ्मय में अनुयोग : स्वरूप और स्वभाव	34 (41-45)

प्रो० राम शरण शर्मा : 236. Jainism 34 (26-40)
डा० विनोद कुमार तिवारी : 237. जैन तत्त्व विचार में जीव तत्त्व : एक समीक्षा 34 (46-49)
श्रीमती सितारा जैन : 238. संस्मरण : ब्र० पंडिता विदुषी-रत्न श्रद्धेया चन्दाबाई 35 (149-51, 243)
डा० सुधांशु कुमार जैन : 239. हमारी आस्थायें और प्रकृति 36 (304-06)
डा० शशि कान्त : 240. Jainism (ed.) 34 (26-40)
241. 'हिमवन्त थेरावली' की वास्तविकता 36 (289-91)
आचार्य शिव चन्द्र शर्मा : 242. विकासवाद : एक समीक्षा 34 (50-53)
श्री ज्ञान चन्द जैन : 243. राष्ट्र का वर्तमान परिदृश्य चिन्ताजनक 34 (126-31)

शोध सारांश :

शोध प्रबन्ध	शोधकर्ता

18. जीवन्धर चम्पू : एक समीक्षात्मक अध्ययन —डा० (श्रीमती) राका जैन 36 (278-82)
19. प्राचीन मराठी जैन आख्यान-काव्य —डा० (सौ०) हेमलता जोहरापुरकर 36 (283-88)

चिन्तन कण :

17. लोक रचना, पंचमेरु, नरक भूमियों और स्वर्गों की अवधारणा —श्री सुखमाल चन्द्र जैन 34 (56-61)
—श्री अजित प्रसाद जैन (62-63)
18. भगवान ऋषभ देव की निर्वाण भूमि —श्री अजित प्रसाद जैन 36 (301-03)

विचार-विन्दु :

16. सत्यन्नास्ति परो धर्मः : मुनि व धनी का मोर्चा —श्रीमती वासंती शहा 34 (53-55)
17. मन्दिर, मूर्ति और वैराग्यता —श्री धन्य कुमार जैन 36 (299-301)

सम्पादकीय अग्रलेख : —श्री अजित प्रसाद जैन

19. तीर्थ क्षेत्रों पर भट्टारक पीठों की स्थापना की वकालत 34 (15-26)
20. प्रधानमन्त्री जी द्वारा समवशरण रथ का प्रवर्तन 35 (108-13)
21. तीर्थ क्षेत्रों का विकास 36 (258-64, 292-98)

परिचर्चा :

7. जिज्ञासा—तीर्थंकरों की संख्या, वर्ण, प्रकृति आदि :
   श्री इन्द्र जीत जैन 34 (64)
   श्री प्रकाश चन्द्र जैन (64-66)
   जस्टिस एम० एल० जैन (66-70)
   डा० शशि कान्त (70-71)
8. जिज्ञासा—जीव और कार्मण शरीर :
   श्री शांतिलाल के० शहा 35 (162)
   श्री प्रकाश चन्द्र जैन 36 (306-07)
   जस्टिस एम० एल० जैन (307-09)

समाचार विमर्श : —श्री अजित प्रसाद जैन

74. भट्टारक जी के वाहन त्याग की पृष्ठ भूमि 34 (83-84)
75. बलात्कार के आरोपी दिवंगत मुनि निर्दोष सिद्ध (84-86)
76. दिगम्बर जैन समाज के शीर्ष नेताओं की बैठक 35 (208-10)
77. शास्त्रि परिषद का वार्षिक अधिवेशन (210-16)
78. तीर्थ संरक्षिणी महासभा का गठन (216-19)
79. गोलाकोट मूर्ति तस्करी कांड (219-23)
80. और दो तीर्थों का उदय 36 (310-18)
81. जम्बूद्वीप, तीस चौबीसी, और अब त्रिलोक मन्दिर निर्माण की महायोजना (313-14)
82. गोलाकोट क्षेत्र—कटे सिरों की बरामदगी (314-15)

गुरुगुण-कीर्तन : —श्री रमा कान्त जैन

33. मल्लिषेण 34 (5-9)
34. भट्ट अकलंक देव 35 (103-07, 113)
35. माणिक्यनन्दि 36 (249-51)

रिपोर्ट :

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र०

14. प्रगति प्रतिवेदन वर्ष 1997-98
   —श्री अजित प्रसाद जैन 35 (181-84)

अन्य रिपोर्ट :

17. इतिहास-मनीषी डा० ज्योति प्रसाद जैन की जन्म जयन्ति तथा शोधादर्श के प्रधान सम्पादक श्री अजित प्रसाद जैन का अभिनन्दन —श्री रमा कान्त जैन 34 (75-76)

18. सारस्वत सम्मान समारोह —श्री नलिन कान्त जैन 35 (115-23)
19. इतिहास-मनीषी डा० ज्योति प्रसाद जैन की पुण्य तिथि पर काव्य संध्या
—श्री अंशु जैन 'अमर' 35 (138-40, 142)
20. श्रुतपंचमी और पुस्तकालय-स्थापना दिवस
—कु० हेमा सक्सेना 35 (145-48, 151)

परिचय : —डा० शशि कान्त

1. डा० अरविन्द कुमार जैन, राज्यमंत्री, उ० प्र० सरकार 34 (77-78)
2. श्री अजित प्रसाद जैन, लखनऊ 35 (189)
3. डा० अमर पाल सिंह, लखनऊ (189-90)
4. श्री अमृत लाल नागर (190-91)
5. श्री कैलाश भूषण जिन्दल, लखनऊ (191)
6. श्री खुशाल चन्द्र गोरावाला, वाराणसी (191-92)
7. श्री गजेन्द्र नाथ चतुर्वेदी, लखनऊ (192)
8. श्री जगजोत सिंह जैन, लखनऊ (192-93)
9. श्री जौहरीमल जैन, लखनऊ (193)
10. डा० दरबारी लाल कोठिया, बीना (193-194)
11. डा० नन्द किशोर देवराज, लखनऊ (194)
12. श्री नमंदेश्वर चतुर्वेदी (194-95)
13 श्री परिपूर्णानन्द वर्मा (195)
14. श्री प्रेम बिहारी, लखनऊ (196)
15. इतिहास-मनीषी डा० बहादुर चन्द्र छाबड़ा, बंगलोर (196-97)
16. श्री महेश्वर पाण्डेय, लखनऊ (197)
17. श्री लक्ष्मी चन्द्र जैन, नई दिल्ली (197-98)
18. सौ० लीलावती जैन, जलगांव (198)
19. श्रीमती वासंती शहा, पुणे (198-99)
20. श्री वीर नन्दन जिन्दल, लखनऊ (199-200)
21. श्री भरत कुमार कौशिक, लखनऊ (200)
22. श्री शांतिलाल के० शहा, सांगली (200-01)
23. श्री श्रवण कुमार श्रीवास्तव (201)
24. श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी (201-02)
25. श्री सत्यन्धर कुमार सेठी (202-03)
26. श्री सौ० एम० अडवानी, लखनऊ (203)

27. श्री सी० के० नागराजा राव (203-04)
28. डा० सैयद इंतिज़ा हुसैन, अलीगढ़ (204)
29. डा० हर्बर्ट बी० गुन्थर, सास्केछवान (कनाडा) (204-05)
30. श्री ज्ञानेन्द्र मोहन सिन्हा, लखनऊ (205)
31. श्री ज्ञान चन्द्र द्विवेदी (205-06)
32. श्री ज्ञान चन्द जैन, लखनऊ (206-07)

पद्य रचनायें :

जस्टिस एम० एल० जैन : 41. उद्गार 35 (242)
डा० ज्योति प्रसाद जैन : 42. महावीर कीर्तन 35 (143)
श्री प्रकाश चन्द्र जैन 'दास' : 43. सोचो, कैसे निर्मल मन होगा 34 (74)
श्री रमा कान्त जैन : 44. भव सागर पार लगेगा कैसे ? 34 (73)
45. वाणी वन्दना 35 (144)
श्री राजीव कान्त जैन : 46. आइये, प्रण करें 34 (72-73)
डा० शशि कान्त : 47. शाश्वत राग 35 (144)

साहित्य सत्कार (समीक्षा) :

श्री अजित प्रसाद जैन 34 (79-80), 35 (163-69), 36 (316-19)
श्री रमा कान्त जैन 34 (80-82), 35 (169-75), 36 (319-24)
डा० शशि कान्त 34 (82-83), 35 (175 80), 36 (324-30)

विविध स्तम्भ : संकलन —श्री रमा कान्त जैन

समाचार विविधा 34 (88-90), 35 (225-32), 36 (334-39)
अभिनन्दन 34 (87), 35 (224-25), 36 (331-34)
शोक संवेदन 34 (90-91), 35 (233), 36 (340)
आभार एवं सूचना 35 (234), 36 (341)
लेखक परिचय 34 (98), 35 (244), 36 (352)
सुभाषित 35 (131)
महावीर वचनामृत 36 (251-52)
भूल सुधार 36 (251)
चित्रावली — सम्मानित सारस्वत 35 (185-88)

पारखी पाठक :

274. डा० अजय कोठारी, चेन्नई (मद्रास) 36 (351)
275. डा० अनिल कुमार जैन, चांदखेड़ा, अहमदाबाद 34 (92)

276.	पं० अमृत लाल जैन शास्त्री, वाराणसी	34 [93], 35 [235], 36 [347]
277.	श्री आनन्द प्रकाश जैन, हस्तिनापुर	36 [346]
278.	श्री इन्द्रजीत जैन, कानपुर	34 [94]
279.	डा० ए० एल० श्रीवास्तव, भिलाई/लखनऊ	35 [239-40]
280.	जस्टिस एम० एल० जैन, नई दिल्ली	35 [242]
281.	प्रा० क० ध० मिश्रीकोटकर, चांदूर बाजार	36 [350]
282.	डा० कमलेश कुमार जैन, दिल्ली	34 [96]
283.	श्री किरण कुमार जैन, सारणी	35 [241], 36 [347]
284.	श्री कुन्दन लाल जैन, दिल्ली	35 [238]
285.	श्री गुलाब चन्द्र जैन, विदिशा	35 [236]
286.	डा० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, आगरा	35 [237], 36 [344-45]
287.	श्री तिलोक मुनि जी, राजकोट	35 [241]
288.	प्रो० देवेन्द्र हाण्डा, चण्डीगढ़	36 [346]
289.	श्री धन्य कुमार जैन, सिहोरा	36 [346]
290.	प्रो० डा० धर्मचन्द्र जैन, कुरुक्षेत्र	34 [92-93]
291.	प० नाथू लाल जैन शास्त्री, इन्दौर	36 [341-42]
292.	श्री निर्मल सेनानी, सिरोंज	35 [240]
293.	श्री नीरज जैन, सतना	34 [97]
294.	डा० नेमी चन्द, इन्दौर	36 [343]
295.	श्री पद्म कुमार जैन, अजमेर	35 [241]
296.	पं० पद्म चन्द जैन, नई दिल्ली	34 [91]
297.	डा० परमानन्द जड़िया, लखनऊ	34 [94-95], 35 [238], 36 [344]
298.	डा० परमेश्वर सोलंकी, लाडनूं	34 [97-98]
299.	डा० पी० जी० मिश्रीकोटकर, नागपुर	36 [348]
300.	श्री प्रकाश पालावत, अहमदाबाद	35 [241], 36 [348-49]
301.	श्री मदन मोहन वर्मा, ग्वालियर	34 [96-97], 35 [240], 36 [345-46]
302.	पं० मनोहर मारवडकर, नागपुर	34 [94]
303.	श्री महावीर प्रसाद जैन सर्राफ, दिल्ली	36 [350]
304.	डा० महेन्द्र सागर प्रचंडिया, अलीगढ़	34 [91]

305.	डा० (श्रीमती) मुन्नी पुष्पा सिंघई, वाराणसी	35 [237]
306.	श्री मोती लाल जैन 'विजय', कटनी	34 [92], 35 [235]
307.	डा० रतन चन्द्र जैन, भोपाल	36 [350]
308.	प्रो० रमेश चन्द्र शर्मा, वाराणसी	35 [240]
309.	श्रीमती राज दुलारी जैन, कानपुर	35 [238], 36 [347]
310.	श्री राजेन्द्र नगावत, इन्दौर	35 [235-36], 36 [348]
311.	डा० राम सजीवन शुक्ल, कोंच	34 [92]
312.	श्रीमती वासन्ती शहा, पुणे	36 [348]
313.	सुश्री विद्या देवी, हजारी बाग	34 [93]
314.	डा० विनोद कुमार तिवारी, रोसड़ा	34 [92], 35 [235]
315.	श्रीमती विमला जैन, कटनी	35 [235]
316.	डा० विश्वनाथ याज्ञिक, लखनऊ	35 [238]
317.	श्री वेद प्रकाश गर्ग, मुजफ्फर नगर	36 [351]
318.	श्री शांतिलाल के० शहा, सांगली	35 [240]
319.	डा० शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी, वाराणसी	36 (346)
320.	श्री शुक्ल चन्द्र जैन, नई दिल्ली	36 [348-49]
321.	साहू शैलेन्द्र कुमार जैन, खुरजा	34 [94]
322.	डा० शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी, लखनऊ	34 [95-96)
323.	डा० शैलेन्द्र कुमार शर्मा, उज्जैन	34 [97], 36 [347]
324.	डा० श्रीरंजन सूरिदेव	36 [349]
325.	डा० श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत	36 [342]
326.	डा० सन्तोष कुमार वाजपेई, सागर	35 [239], 36 [351]
327.	ब्र० संदीप जैन 'सरल', बीना	34 [91-92], 35 [237], 36 [349]
328.	श्री सतीश कुमार जैन, दिल्ली	36 [349-50]
329.	श्री सुखमाल चन्द्र जैन, नई दिल्ली	35 [237]
330.	श्री सुन्दर सिंह जैन, दिल्ली	35 [241], 36 [350-51]
331.	डा० सुरेन्द्र कुमार आर्य, उज्जैन	36 [343-44]
332.	डा० हरिश्चन्द्र शास्त्री, भुरेना	34 [93-94]
333.	श्री हुकम चन्द जैन, मेरठ	34 [91], 35 [238-39]
334.	डा० सौ० हेमलता जोहरापुरकर, काटोल (नागपुर)	35 [241]

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

अहिंसा परमो धर्मः

यतो धर्मस्ततो जयः

विश्व प्रेम

लखनऊ-उत्तर प्रदेश

આ.
કૈલ
જ્ઞા
કો